* ॐ श्रीपरमात्मने नम: *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

वर्ष ९३

संख्या ३

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीकृष्णसे राधाजीका प्राकट्य

भगवान् नृसिंह

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

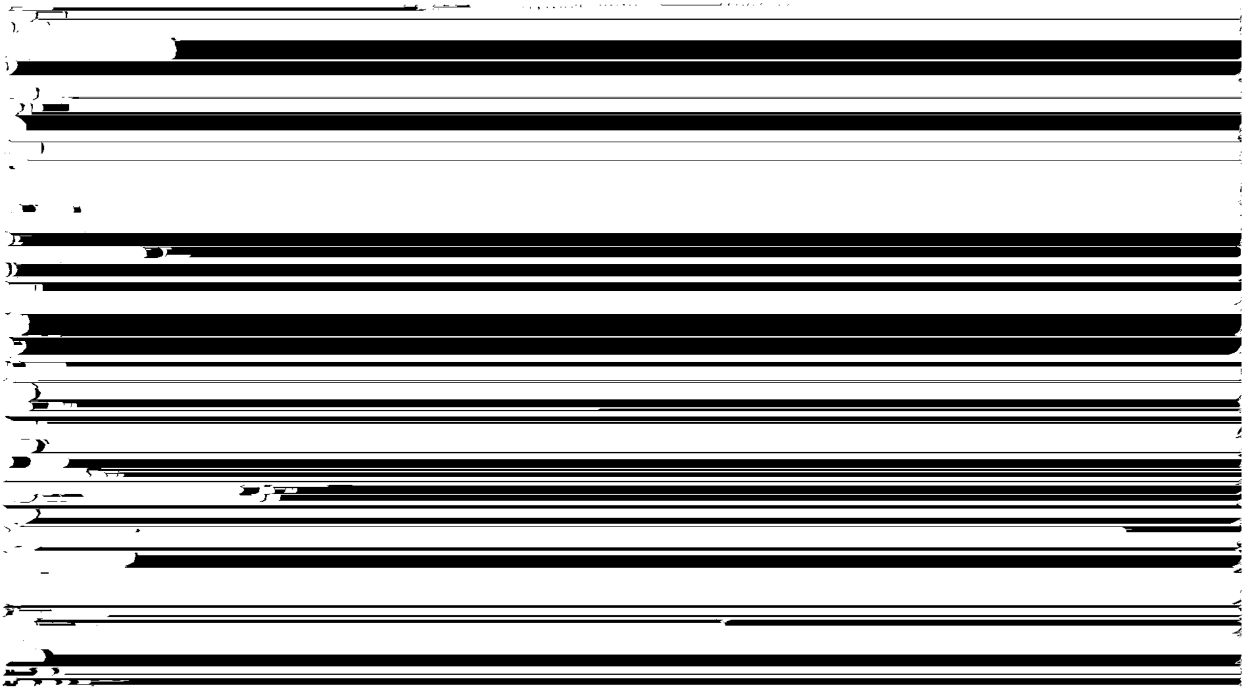

कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मार्च २०१९ ई०

संख्या ३

पूर्ण संख्या ११०८

भगवान् नरसिंहको नमस्कार है!

कृत्वा नृसिंहं वपुरात्मनः परं हिताय लोकस्य सनातनो हरिः।
जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितेः सुतं तं नारसिंहं पुरुषं नमामि॥

× × × ×

तप्तहाटककेशान्तज्वलत् पावकलोचन। वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते॥
पान्तु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः। हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः॥

जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये स्वयं ही श्रेष्ठ नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखोंद्वारा दितिनन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परमपुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। ××× हे दिव्य सिंह! तपाये हुए स्वर्णके समान पीले केशोंके भीतर प्रज्वलित अग्निकी भाँति आपके नेत्र देदीप्यमान हो रहे हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक कठोर है, इस प्रकार अमित प्रभावशाली आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है। भगवान् नृसिंहके नखरूपी हलके अग्रभाग, जो हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके वक्षःस्थलरूपी खेतकी रक्तमयी कीचड़के लगनेसे लाल हो गये हैं, आपलोगोंकी रक्षा करें। [श्रीनरसिंहपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मार्च २०१९ ई०

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

१- भगवान् नरसिंहको नमस्कार है! ३
२- कल्याण ५
३- श्रीकृष्णके वामांशसे मूल प्रकृति श्रीराधाका प्राकट्य [आवरणचित्र-परिचय] ६
४- मनको संयत और एकाग्र करनेके उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७
५- 'पिबत भागवतं रसमालयम्' (गोलोकवासी श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र) १०
६- कामधेनुका सुपात्र (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय). ११
७- भोगवाद और आत्मवाद (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... १३
८- पुरुषार्थ (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज) १८
९- कामनाका त्याग (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १९
१०- जगत मुसाफिरखाना [कविता] (श्रीगेंदनलालजी कन्नौजिया) २०
११- श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें युगलतत्त्व (गोस्वामी श्रीविष्णुकान्तजी महाराज, निम्बार्कपीठ, प्रयाग) २१
१२- व्रजमें होली खेलत राधा-कृष्ण (श्रीउमेशप्रसादसिंहजी) २३
१३- 'शारदे! चरणकमल रज दे!' [कविता] (श्रीओझेलालजी शिववेदी, एम०ए०, साहित्यरत्न) २४
१४- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार) २५
१५- दृढ़ संकल्प [प्रेरक-कथा] (श्रीराजेशजी माहेश्वरी) २६
१६- श्रीवृन्दावन-महिमा २७
१७- 'जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे' (डॉ० श्रीमृत्युंजयजी उपाध्याय) .. २८
१८- श्रीजानकीजीवनाष्टकम् ३०
१९- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) ३१
२०- शरीरको कैसे निरोग रखा जाय? (श्रीरामचन्द्रजी वैरागी) ३२
२१- अधिदेवता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') ३३
२२- हम क्या करें? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ३५
२३- भगवान् शिवके मांगलिक वरवेशकी एक झाँकी [कविता] (श्रीशिवकुमारसिंहजी 'शिवम्') ३६
२४- एक विलक्षण विभूति—ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव [संत-चरित] (श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव) ३७
२५- नामधारी सिक्खोंकी गोभक्ति (संत श्रीनिधानसिंहजी आलिम).४१
२६- साधनोपयोगी पत्र ४३
२७- व्रतोत्सव-पर्व [वैशाखमासके व्रत-पर्व] ४५
२८- कृपानुभूति ४६
२९- पढ़ो, समझो और करो ४७
३०- मनन करने योग्य ५०

चित्र-सूची

१- श्रीकृष्णसे राधाजीका प्राकट्य .... (रंगीन) .... आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् नृसिंह .... (,,) .... मुख-पृष्ठ
३- श्रीकृष्णसे राधाजीका प्राकट्य .... (इकरंगा) ६
४- राजा सहस्रार्जुन .... (,,) ११
५- परशुरामद्वारा क्षत्रियविनाशकी प्रतिज्ञा .... (,,) १२
६- श्रीरामका लक्ष्मणको उपदेश .... (,,) १४
७- ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव .... (,,) ३७
८- नामधारी सिक्खोंकी सत्यनिष्ठा .... (,,) ४२

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹२५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क } **वार्षिक** US$ 50 (₹3000) / **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹15,000) {Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—काम, क्रोध, लोभ आदि तुम्हारे स्वभाव नहीं हैं, विकार हैं। स्वभाव या प्रकृतिका परिवर्तन बहुत कठिन है, असम्भव-सा है; पर विकारोंका नाश तो प्रयत्नसाध्य है। इसीलिये भगवान्ने गीतामें 'ज्ञानी भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है, प्रकृतिका निग्रह कोई क्या करेगा' कहा है—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

पर साथ ही काम, क्रोध, लोभको आत्माका पतन करनेवाले और नरकोंके त्रिविध द्वार बतलाकर उनका त्याग करनेके लिये कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण-क्षत्रियादि प्रकृतिका त्याग बहुत ही कठिन है, पर काम-क्रोधादि विकारोंका त्याग कठिन नहीं है।

याद रखो—काम, क्रोधादि विकार तभीतक तुमपर अधिकार जमाये हुए हैं, जबतक इन्हें बलवान् मानकर तुमने निर्बलतापूर्वक इनकी अधीनता स्वीकार कर रखी है। जिस घड़ी तुम अपने स्वरूपको सँभालोगे और अपने नित्य संगी परम सुहृद् भगवान्के अमोघ बलपर इन्हें ललकारोगे, उसी घड़ी ये तुम्हारे गुलाम बन जायँगे और जी छुड़ाकर भागनेका अवसर ढूँढ़ने लगेंगे।

याद रखो—ये विकार तो दूर रहे, ये जिनमें अपना अड्डा जमाकर रहते हैं और जहाँ अपना साम्राज्य-विस्तार किया करते हैं, वे इन्द्रिय-मन भी तुम्हारे अनुचर हैं। तुम्हारी आज्ञाका अनुसरण करनेवाले हैं। पर तुमने उनको बड़ा प्रबल मानकर अपनेको उनका गुलाम बना रखा है। इसीसे वे तुम्हें इच्छानुसार नचाते और दुर्गतिके गर्तमें गिराते हैं।

याद रखो—जितने भी बुरे कर्म होते हैं, उनमें ये काम, क्रोध आदि विकार ही प्रधान कारण हैं। ये ही तुम्हारे प्रबल शत्रु हैं, जिनको तुमने अपने अन्दर बसा ही नहीं रखा है, बल्कि उनके पालन-पोषण और संरक्षणमें भ्रमवश तुम गौरव तथा सुखका अनुभव करते हो।

याद रखो—ये काम, क्रोध, लोभ और इनके साथी-संगी मान, अभिमान, दर्प, दम्भ, मोह, कपट, असत्य और हिंसा आदि दोष जबतक मानव-जीवनको कलुषित करते रहेंगे, तबतक उसका उद्धार होना अत्यन्त कठिन है। पर ये ऐसे प्रबल हैं कि प्रयत्न करनेपर भी सहजमें जाना नहीं चाहते।

याद रखो—ये कितने ही प्रबल क्यों न हों, पर आत्माके तथा भगवान्के बलके सामने इनका बल कोई भी स्थान नहीं रखता। जैसे सूर्याभाससे ही अन्धकारका नाश होने लगता है, वैसे ही भगवान्की शक्तिके प्रकाशका अरुणोदय इन्हें तत्काल नाश कर डालता है। उसके सामने ये खड़े भी नहीं रह सकते।

याद रखो—आत्मा तो तुम्हारा स्वरूप ही है और भगवान् उस आत्माके भी आत्मा हैं। आत्माके साथ उनकी सजातीयता तो है ही, एकात्मता भी है। अनुभूति होनेभरकी देर है, फिर तो इन विकारोंकी सत्ता वैसी ही रह जायगी, जैसी जागनेके बाद स्वप्नके पदार्थोंकी रह जाती है। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

श्रीकृष्णके वामांशसे मूल प्रकृति श्रीराधाका प्राकट्य

कल्पके आदिमें विश्वके आदिकारण भगवान् श्रीकृष्णके मानसमें सृष्टिविषयक संकल्प उदय हुआ। [उन्होंने अपने अव्यय स्वरूपको स्वेच्छासे दो रूपोंमें विभक्त कर लिया। उनका वामांश नारीरूप तथा दक्षिणांश पुरुषरूप हुआ।] उनका वह आह्लादक नारीरूप ही श्रीराधाके नामसे अभिहित होता है। जैसा कि ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें प्रतिपादित है—

श्रीकृष्णतेजसोऽर्धेन सा च मूर्तिमती सती।
एका मूर्तिर्द्विधाभूता भेदो वेदे निरूपितः॥
इयं स्त्री सा पुमान् किं वा सा वा कान्ता पुमानयम्।
द्वे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च।
पराक्रमेण बुद्ध्या वा ज्ञानेन सम्पदापि च॥

(ब्रह्मवैवर्तपु० श्रीकृष्णजन्म० १३। ९७-९८)

भगवती श्रीराधा तेजस्विता आदि गुणोंमें परमपुरुष श्रीकृष्णसे अल्पमात्र भी न्यून नहीं हैं।

उन आह्लादिनी महाशक्तिके साथ परमपुरुष श्रीकृष्णका सुदीर्घकालपर्यन्त लीलाविहार होता रहा, तदनन्तर सृष्टिके संकल्पको पूर्ण करनेकी अपेक्षासे श्रीकृष्णने अपने ही स्वरूपभूत तेजका उन पराप्रकृतिमें आधान किया। मूलप्रकति श्रीराधामें सौ मन्वन्तरतक अवस्थित रहनेके उपरान्त वह तेज एक अप्राकृत शिशुरूपमें परिणत हो गया। देवी श्रीराधाने उसे ब्रह्माण्डको आवृत करनेवाली अगाध जलराशिमें छोड़ दिया। यह शिशु ही जलशायी विराट् पुरुषके नामसे प्रसिद्ध हुआ। तदुपरान्त श्रीराधासे लक्ष्मी, सरस्वती तथा स्वयं उन्हींकी कार्यरूपा मूर्ति श्रीराधिकाका प्राकट्य हुआ। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंको पुनः दो रूपोंमें विभक्त किया, उनका दक्षिणार्धांग द्विभुज श्रीकृष्णके रूपमें और वामार्धांग चतुर्भुज विष्णुके रूपमें परिणत हुआ। विष्णुको लक्ष्मी एवं सरस्वतीके साथ श्रीकृष्णने वैकुण्ठमें अधिष्ठित किया तथा स्वयं वे अपनी कार्यरूपा शक्ति राधिकाके साथ स्थित रहे। वैकुण्ठाधिपति श्रीविष्णुके नाभिकमलसे आविर्भूत ब्रह्माजीके द्वारा सृष्टिका विस्तार हुआ। भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे उनके प्रेमभाजन गोप एवं श्रीराधाके रोमकूपोंसे असंख्यासंख्य गोपांगनाएँ प्रकट हुईं। कारणप्रकृतिरूपा श्रीराधासे भगवती दुर्गाका आविर्भाव हुआ। ये श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री कही जाती हैं। इन्हींसे विश्वकी सभी शक्तियोंका समुद्भव होता है। तदुपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण पुनः दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वामांग भगवान् रुद्रके रूपमें परिणत हुआ तथा दक्षिणांगसे वे अपने मूल स्वरूपमें ही बने रहे। पराप्रकृति श्रीराधासे आविर्भूत श्रीदुर्गा ही भगवान् रुद्रकी परमशक्ति हुईं। इस प्रकार विश्वके आदिकारण श्रीकृष्णने कारणरूपा श्रीराधाके संयोगसे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रको एवं उनकी शक्तियोंको प्रकटकर उन्हें सृष्टिके सृजन, पालन तथा संहारके कार्यमें नियोजित किया। वस्तुतः श्रीराधा-माधव ही सृष्टिके उद्भावक, पालक एवं संहर्ता हैं, यह समग्र प्रपंच उन्हींसे उद्भूत तथा उनसे ही पुष्ट होकर अन्तमें उन्हींमें विलयको भी प्राप्त होता है।

मनको संयत और एकाग्र करनेके उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यके कल्याणमें सबसे प्रधान बाधा बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें आसक्त होकर उन सबके अधीन हो जाना ही है; क्योंकि विषयोंमें आसक्तिवाले यत्नशील विवेकी मनुष्यकी भी इन्द्रियाँ बलपूर्वक उसके मनको विषयोंकी ओर आकर्षित कर लेती हैं (गीता २।६०)। इसलिये साधकको मनके द्वारा सभी इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माके शरण हो जाना चाहिये (गीता २।६१)। जबतक मन वशमें नहीं होता तबतक परमात्माकी प्राप्ति होना बहुत ही कठिन है। भगवान् कहते हैं—

'जिसका मन वशमें नहीं हुआ है, ऐसे पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है और वशमें किये हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधनसे उसका प्राप्त होना सहज है—यह मेरा मत है (गीता ६।३६)।'

अत: मनको अपने वशमें और स्थिर करनेके लिये शास्त्रोंमें जो बहुत-से उपाय बताये हुए हैं, उनमेंसे किसी भी उपायके द्वारा मनको निगृहीत और स्थिर करना परम आवश्यक है। मनकी चंचलता तो प्रत्यक्ष है। अर्जुनने भी चंचल होनेके कारण मनको वशमें करना कठिन बताया है (गीता ६।३३-३४)। किंतु भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके कथनका समर्थन करते हुए मनको रोकना कठिन मानकर भी इसको वशमें करनेका उपाय बतलाते हैं—

'हे महाबाहो! नि:सन्देह मन चंचल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है, परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है (गीता ६।३५)।

महर्षि पतंजलिजीने भी कहा कहा है—

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध:।'

(योगदर्शन १।१२)

'अभ्यास और वैराग्यसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है।'

वे अभ्यासका रूप इस प्रकार बतलाते हैं—

'तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास:।'

(योगदर्शन १।१३)

'उन दोनोंमेंसे स्थितिके लिये जो प्रयत्न करना है, वह 'अभ्यास' है।

'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमि:।'

(योगदर्शन १।१४)

'परंतु यह अभ्यास लम्बे समयतक, निरन्तर (लगातार) और आदरपूर्वक सांगोपांग सेवन किया जानेपर दृढ़ अवस्थावाला होता है।'

इस अभ्यासके अनेक प्रकार हैं। जैसे—

(१) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ ही परमात्माके स्वरूपका अनुभव करना और वहीं मनको परमात्मामें लगा देना; क्योंकि परमात्मा सब जगह सदा ही व्यापक हैं, कोई भी ऐसा स्थान या काल नहीं, जहाँ परमात्मा न हों।

(२) मन जहाँ-जहाँ संसारके पदार्थोंमें जाय, वहाँ-वहाँसे उसको विवेकपूर्वक हटाकर परमात्माके स्वरूपमें लगाते रहना। (गीता ६।२६)

(३) विधिपूर्वक एकान्तमें बैठकर सगुण भगवान्का ध्यान करना। भगवान्ने गीतामें कहा है—'शुद्ध भूमिमें, जिसके ऊपर क्रमश: कुशा, मृगछाला* और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसनको स्थिर-स्थापन करके उस आसनपर बैठकर चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्त:करणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे। काया, सिर और गलेको समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर अन्य दिशाओंको न देखता हुआ, ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्त:करणवाला सावधान योगी मनको रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे (गीता ६।११—१४)।'

* मृगचर्म अपनी स्वाभाविक मृत्युसे मरे हुए मृगका होना चाहिये, जान-बूझकर मारे हुए मृगका नहीं। हिंसासे प्राप्त मृगचर्म साधनमें सहायक नहीं हो सकता। पवित्र मृगचर्मके अभावमें ऊन और कुशाका आसन ही पर्याप्त है।

(छठे अध्यायके चौदहवें श्लोककी गीतातत्त्व-विवेचनी टीकामें ध्यानके लिये सगुण भगवान्‌के विभिन्न कुछ स्वरूपोंका निरूपण किया हुआ है। उनको पढ़कर उनमेंसे अपने श्रद्धा-विश्वास और रुचिके अनुरूप किसी भी एक स्वरूपका ध्यान ऊपर बतायी हुई विधिसे करना चाहिये।)

(४) एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही हैं—ऐसा दृढ़ निश्चय करके तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा उस आनन्दमय परमात्माका ध्यान करना। भगवान् गीतामें बतलाते हैं—

'इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं, (उस योगको निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है)।'

इस प्रकार समझकर निर्गुण-निराकार परमात्माका ध्यान करनेसे परमात्माके यथार्थ तत्त्वका अनुभव होनेपर मन-बुद्धि अचल और स्थिर हो सकती हैं।

(५) पहले सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके, विवेकपूर्वक मनके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर, धीरे-धीरे उपरत होकर मनको एक सच्चिदानन्दघन निर्गुण निराकार ब्रह्ममें लगा देना।

'क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।'

(गीता ६। २५)

(६) निष्काम कर्मद्वारा पदार्थों और कर्मोंमें आसक्तिसे रहित एवं सम्पूर्ण संकल्पोंसे रहित हो जाना। भगवान् कहते हैं—

'जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है (गीता ६। ४)।'

(७) कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग—कोई भी साधन क्यों न हो, उसमें मनुष्यका आहार-विहार, साधन, क्रिया, सोना, जागना—सभी यथायोग्य और उचित होना चाहिये (गीता ६। १७)। ये सब यथायोग्य होनेपर जब योग सिद्ध हो जाता है तब मनुष्यका चित्त वैसे ही निगृहीत, अचल और स्थिर हो जाता है, जैसे वायुरहित स्थानमें दीपशिखा (गीता ६। १९)।

गीताके छठे अध्यायमें भगवान्‌ने आत्मा यानी शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धिके संयमके बहुत-से उपाय बताये हैं; इसलिये इस अध्यायका नाम ही है—आत्मसंयमयोग। उनमेंसे कुछ उपायोंका ऊपर दिग्दर्शन कराया गया है। इनमेंसे कोई-सा भी उपाय करें तो मन संयत और स्थिर होकर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। गीतादि शास्त्रोंमें और भी बहुत-सी युक्तियाँ बतायी गयी हैं, उनको विवेकपूर्वक भलीभाँति समझकर काममें लाना चाहिये।

(८) अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर सबके द्वारा सब प्रकारसे ईश्वरके शरण हो जाना। योगदर्शनमें बताया गया है—'**ईश्वरप्रणिधानाद्वा**' (१। २३)।

'ईश्वरकी शरणागतिसे भी (समाधिकी सिद्धि शीघ्र हो सकती है)।'

(९) प्राण और मनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राणोंके निरोधसे मनका निरोध हो जाता है और मनके निरोधसे प्राणोंका निरोध हो जाता है। इसलिये प्राणायामका साधन करना चाहिये। श्रीपतंजलिजी कहते हैं—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

(योगदर्शन १। ३४)

'प्राणवायुको बारंबार बाहर निकालने और रोकनेके अभ्याससे भी चित्त निर्मल होकर एकाग्र हो जाता है।'

भगवान् श्रीकृष्णने भी गीताके चौथे अध्यायके २९वें, ३०वें श्लोकोंमें यज्ञके रूपसे प्राणायामको परमात्माकी प्राप्ति का साधन माना है। इसके सिवा, वहाँ श्लोक २४ से २८ तक और भी दस साधन बताये हैं, जो सभी मनको एकाग्र और वशमें करनेके लिये परम लाभदायक हैं।

(१०) जैसे उन्मत्त हाथीको वशमें करना कठिन है, उसी प्रकार मनको वशमें करना बड़ा कठिन है, फिर भी जैसे हाथी अंकुशसे वशमें हो जाता है, वैसे ही यह मन साधनसे वशमें हो जाता है। मनपर

विजय प्राप्त करनेके उपाय योगवासिष्ठमें इस प्रकार बतलाये गये हैं—

अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसङ्गम एव च।
वासनासम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम्॥
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल।

(योगवासिष्ठ उपशमप्रकरण ९२। ३५, ३६ का पूर्वार्ध)

'अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति, साधु-संगति, वासनाका सर्वथा परित्याग और प्राणस्पन्दनका निरोध—ये ही युक्तियाँ चित्तपर विजय पानेके लिये निश्चितरूपसे दृढ़ उपाय हैं।'

अभिप्राय यह कि अध्यात्मविषयक शास्त्रोंका मनन करके उनका ज्ञान प्राप्त करनेसे, अध्यात्मविषयके ज्ञाता श्रेष्ठ पुरुषोंका संग करके उनसे अध्यात्म और ध्यान आदिके विषयमें वार्तालाप करने और उनसे मनको रोकनेकी युक्तियाँ सुन-समझकर उनके अनुसार अभ्यास करनेसे, सांसारिक विषयभोगोंकी वासनाओंको अत्यन्त हानिकारक समझकर विचारद्वारा उनका भलीभाँति त्याग करनेसे तथा युक्तिपूर्वक प्राणायाम करनेसे मन वशमें और एकाग्र होता है।

ऊपर अभ्यासके कई प्रकार बतलाये गये। जैसे अभ्याससे मन वशमें होकर निरुद्ध हो जाता है, इसी प्रकार संसारसे वैराग्य होनेपर भी हो जाता है। वैराग्यका रूप श्रीपतंजलिजीने इस तरह बतलाया है—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।

(योगदर्शन १। १५)

'पुरुषके ज्ञानसे जो प्रकृतिके गुणोंमें तृष्णाका सर्वथा अभाव हो जाना है, वह 'परवैराग्य' है।'

संसारसे वैराग्य होनेके अनेक उपाय हैं—

(१) परमात्माका यथार्थ ज्ञान होनेपर स्वतः ही वैराग्य हो जाता है।

(२) जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख तथा दोषोंका बार-बार विचार करनेसे भी वैराग्य होता है।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥

(गीता १३। ८ का उत्तरार्ध)

श्रीपतंजलिजी कहते हैं—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः। (योगदर्शन २। १५)

'परिणामदुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख—ऐसे तीन प्रकारके दुःख सबमें विद्यमान रहनेके कारण और तीनों गुणोंकी वृत्तियोंमें परस्पर विरोध होनेके कारण विवेकीके लिये सब-के-सब कर्मफल दुःखरूप ही हैं।' अर्थात् दुःख तो दुःख है ही, विवेकको दृष्टिसे सुख भी दुःख ही है।

भाव यह कि संसारके पदार्थ, विषयभोग और शरीर—सभी प्रत्यक्ष ही दुःखरूप, परिणामी, क्षणभंगुर और विनाशशील हैं। स्त्री, पुत्र, पति, शरीर, धन, सम्पत्ति आदि सभी पदार्थ प्रत्यक्ष ही कालके मुखमें जा रहे हैं—ऐसा विवेक-विचारपूर्वक समझनेसे स्वाभाविक ही संसारसे वैराग्य हो जाता है। भगवान्ने गीतामें बतलाया है कि—

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता (५। २२)।'

(३) वीतराग महापुरुषोंके संगसे भी वैराग्य उत्पन्न होकर चित्त वशमें हो सकता है।

(४) संसारके पदार्थों और भोगोंमें रमणीयता और सुखबुद्धि न रहनेसे भी वैराग्य हो जाता है।

(५) जिनमें भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यका एवं जगत्के यथार्थ स्वरूपका वर्णन हो, उन सत्-शास्त्रोंके अनुशीलनसे भी वैराग्य हो सकता है।

(६) भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, धामके सम्बन्धमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रवण, मनन और चिन्तन करनेसे भी भगवान्में प्रेम हो जानेपर स्वतः ही संसारसे वैराग्य हो सकता है।

इसी तरह अभ्यास और वैराग्यके और भी अनेक प्रकार हैं। जिस किसी प्रकारसे हो, कल्याणकामी मनुष्योंको अपने मनको वशमें करके परमात्मामें तत्परतासे लगना चाहिये। व्यवहारकालमें तो यह मन चंचल रहता

ही है, एकान्तमें आत्मकल्याणके साधनके लिये बैठनेपर भी मन इधर-उधर भटकता रहता है। अतः यदि इसके निग्रहका उपाय नहीं किया जायगा तो साधकका जबतक जिस तरह समय बीतता आया है, वैसे ही भविष्यमें बीतता रहेगा। इससे यह मनुष्य-जन्मका अमूल्य समय व्यर्थ चला जायगा। अतः मनुष्य-जन्मके समयको सार्थक बनानेके लिये शीघ्र-से-शीघ्र इस मनके निग्रहका साधन करना आवश्यक है; क्योंकि अनादिकालसे जो अनन्त दुःखोंकी प्राप्ति होती आ रही है, यह साधन करनेसे ही दूर हो सकती है।

यह मन ही मनुष्यका मित्र है और मन ही शत्रु है। जीता हुआ मन तो मित्र है और जो मन जीता हुआ नहीं है, वह शत्रु है। भगवान् भी गीतामें कहते हैं—

'जिस मनुष्यद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उस मनुष्यका तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें बर्तता है (६।६)।'

भगवान्के इस कथनपर भलीभाँति ध्यान देना चाहिये और अपने सुधारके लिये तत्पर हो जाना चाहिये। मनुष्यका अभ्यास बड़ा प्रबल होता है। वह दिनमें जैसा मनन करता है, उसके अनुसार रात्रिमें स्वप्नमें भी प्रायः वैसा ही मनन स्वाभाविक होता रहता है। इसलिये हर समय ही भगवान्के स्वरूपका मनन करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। नहीं तो, मनुष्यके अधिकारमें जो भी कुछ सम्पत्ति, बल, बुद्धि आदि पदार्थ हैं, वे फिर क्या काम आयेंगे! मृत्यु होनेके पश्चात् ये सब यहीं रह जायँगे। अतः उनको और अपने सर्वस्वको लगाकर भी जिस किसी प्रकारसे भी हो, मनको वशमें करनेके लिये वैराग्ययुक्त चित्तसे कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त तत्परतापूर्वक प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि—

'मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।'

'पिबत भागवतं रसमालयम्'

एक दिन भगवान् व्यासदेव प्रातःकृत्य सम्पन्नकर सरस्वतीके तटपर बैठे हुए थे। आज उनके हृदयमें और दिनोंकी तरह प्रफुल्लता न थी। कोई कमी हृदयको कुरेद रही थी। वे सोचने लगे कि जनहितके लिये मैंने वेदोंको शाखाओंमें बाँट दिया है और अबतक सत्रह पुराणों और महाभारतकी रचना कर दी है। फिर भी मेरा मन असन्तुष्ट क्यों है? वह कौन-सी कमी रह गयी है, जिसकी पूर्तिके लिये अन्तःकरण अकुला रहा है?

उन्हें भान हुआ कि मैंने परमहंसोंके प्रिय धर्मोंका प्रायः निरूपण नहीं किया, इसीसे यह बेचैनी है। ब्रह्म रसरूप है, अतः रसरूपमें उसका वर्णन भी अपेक्षित है। ठीक इसी अवसरपर महाभागवत श्रीनारदजी वहाँ आ पधारे। व्यासजी तुरंत उठ खड़े हुए। उन्होंने देवर्षिकी विधिवत् पूजा की। देवर्षिने पूछा—'आप अकृतार्थ पुरुषकी भाँति खिन्न क्यों हैं?' व्यासजीने कहा—'देवर्षे! सचमुच मेरा मन सन्तुष्ट नहीं है। मुझमें जो कमी रह गयी है, कृपया उसे आप बतायें।'

नारदजीने कहा—'आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, वैसा निरूपण रसरूप ब्रह्मका नहीं किया है। रसके उल्लासके लिये ब्रह्म रसमय लीला करता है। आप उसका रसमय ही निरूपण करें। इससे आपके हृदयको सन्तोष हो जायगा।'

इसके बाद भगवान् व्यासदेवने जिस ग्रन्थकी रचना की, उसीका नाम है—श्रीमद्भागवत। पुष्पिकामें भगवान् व्यासदेवने इसे 'पारमहंसी संहिता' कहा है। श्रीमद्भागवत भगवान्का स्वरूप ही है। भगवान् रस हैं, भागवत भी रस है। (गोलोकवासी श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

कामधेनुका सुपात्र

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

पुराणोंमें वर्णन आता है कि सहस्रार्जुन धर्मपूर्वक

पृथ्वीपर शासन करता था। वह बड़ा पराक्रमी राजा था। एक बार वह वनमें मृगया खेलने गया। वहाँपर उसके मनमें आया कि जब यहाँतक आ ही गये हैं तो थोड़ी दूर और चलकर महात्मा जमदग्निको प्रणाम भी कर लें। उसके जीवनमें सात्त्विक वृत्ति भी थी, रावणकी तरह वह सद्वृत्तिसे शून्य नहीं था। पर उसमें एक दोष प्रबल हो गया था। रावण और सहस्रार्जुनके जीवनकी अगर तुलना करें तो दीख पड़ेगा कि जहाँ मुनियोंके आश्रमोंको विनष्ट करनेमें रावणको आनन्दका अनुभव होता था, वहाँ सहस्रार्जुनके जीवनमें मुनियोंके प्रति आदरकी वृत्ति थी, जिससे प्रेरित होकर वह जमदग्निके आश्रममें जाता है। यहाँपर उसकी बुद्धि स्वस्थ और अनुकूल दिखायी देती है। जब वह जमदग्निके आश्रममें पहुँचा तो जमदग्निने उसका स्वागत और सम्मान किया; क्योंकि ये दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। मननशील त्यागी महात्मा और सत्ताधीश एक-दूसरेके सहायक हो सकते हैं। शासक मुनियोंके समक्ष विनत होकर उनसे प्रेरणा ले सकते हैं और सत्ताधीश होनेके कारण मुनियोंको सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं। दैत्यों और राक्षसोंसे मुनियोंकी रक्षा करना राजाका कर्तव्य है। यह एक स्वाभाविक क्रम है कि दोनों एक-दूसरेको महत्त्व दें। और वही यहाँपर हुआ। पर आगे चलकर सहस्रार्जुनके जीवनमें इसकी प्रतिक्रिया बड़ी प्रतिकूल हुई। राजाका स्वागत करने जब जमदग्नि बढ़े तो यह सोचते हुए कि स्वागत आश्रमकी परम्पराके अनुसार किया जाय अथवा राजसिक परम्पराके अनुकूल? उन्हें यही लगा कि ये तो राजसी व्यक्ति हैं, इनको आश्रमके कन्द-मूल-फल सम्भवतः सुस्वादु और प्रिय नहीं लगेंगे, इसलिये इनका सत्कार तो राजसिक वैभवसे किया जाना चाहिये और उन्होंने उनका सेनासहित राजकीय सत्कार किया भी, जो उस वनमें किसी अन्यद्वारा सम्भव भी नहीं था। यहींसे सहस्रार्जुनके मनमें ईर्ष्या जाग उठी। वैभवशाली व्यक्तिको किसी दूसरेका वैभव देखकर प्रसन्नता नहीं होती। जब वह देखता है कि दूसरेके पास इतना वैभव है, तो उसे यह जाननेकी इच्छा होती है कि इतना वैभव उसके पास आया कहाँसे? सहस्रार्जुनने जमदग्निसे पूछ भी लिया—'महाराज! आप तो वनमें स्थित एक कुटियामें निवास करते हैं, आपके पास इतना वैभव कहाँसे आया?' जमदग्निने भोलेपनसे कह दिया—'मेरे पास कामधेनु है। उस कामधेनुसे जो माँगता हूँ, वह मुझे देती है। यह सारा वैभव उसीका दिया हुआ है।'

बस, इतना सुनते ही पुरुषार्थी सहस्रार्जुनकी वृत्ति बदल गयी। अबतक उसमें किसी वस्तुको पानेके लिये पुरुषार्थकी वृत्ति थी, पर अब कौन-सी वृत्ति आ गयी? कामधेनुके प्रति लोभकी। कामधेनु अर्थात् बिना कुछ किये जो चाहे वह मिल जाय। पहले तो व्यक्ति यह सोचता है कि यह करेंगे तब यह मिलेगा। और कामधेनु हो तो करें कुछ नहीं, बैठे-बैठे जो चाहें वह मिल जाय। यह लोभकी पराकाष्ठा है। कुछ न करें और इच्छित वस्तु मिल जाय।

पुरुषार्थी सहस्रार्जुनमें अब बिना कुछ किये फल पानेकी वृत्ति आ गयी। जबतक कामनाके साथ कर्म करनेकी वृत्ति रहती है, तबतक लोभमें सन्तुलन बना रहता है, लेकिन जब बिना कुछ किये फल पानेकी वृत्ति आती है तब क्या स्थिति होती है! सहस्रार्जुनने जमदग्निसे कहा—'महाराज! जब आपको कुटियामें रहकर तपस्याका ही जीवन व्यतीत करना है, तो आपके पास कामधेनुकी क्या उपयोगिता है? इसकी उपयोगिता तो मेरे पास है। मुझे प्रजाका पालन, संरक्षण तथा संचालन करना है, और इसके लिये मुझे कामधेनुसे क्षमता प्राप्त हो जायगी।' जमदग्निने उन्हें बता दिया कि—'कामधेनु मुनिके ही पास रहेगी, राजाके पास नहीं।' इसका तात्पर्य क्या है? यह कि जो मुनि हैं, मननशील हैं, विचारशील हैं, उनके जीवनमें संकल्प सबके लिये कल्याणकारी ही होगा। उनके संकल्पकी पूर्तिमें सबका कल्याण होगा। पर जिस व्यक्तिके मनमें भोगवासनाएँ हैं, उसे कर्मठ होना चाहिये और पुरुषार्थके द्वारा ही अपनी कामना पूरी करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। कामधेनु एक ओर जहाँ परदुःखकातर महात्माओंके पास कल्याणकारी है, वहीं दूसरी ओर भोगपरायण व्यक्तिके पास उतनी ही विनाशकारी भी है। एक ओर सदुपयोग हो सकता है तो दूसरी ओर उसका दुरुपयोग भी सम्भव है। भोगपरायण व्यक्ति संकल्पमात्रसे भोगकी वस्तुएँ पा लेनेकी स्थितिमें कर्म-शून्य होकर अपरिमित भोगमें डूब जायगा। समस्त लोगोंके हितको अपने लिये समेटकर वह सदा दूसरोंके लिये अमंगल और दुःख-कष्टकी कामना करेगा। इसलिये मुनिने स्पष्ट कह दिया—'कामधेनु राजाके पास नहीं, मुनिके ही पास रहेगी।' और तब राजाके उस असन्तुलित लोभका परिणाम प्रकट हो गया। पहले तो ईर्ष्या हुई, फिर लोभ और अब लोभकी पराकाष्ठा यह है कि बलपूर्वक छीन लेनेकी चेष्टा होने लगी। सामनेवाला व्यक्ति अगर माँगनेपर न दे और लोभ शान्त हो जाय, तब तो वह नियन्त्रित लोभ है। लेकिन अगर उस इनकारसे क्रोध आ जाय और बलपूर्वक छीननेका प्रयास आरम्भ हो जाय, तो समझ लेना होगा कि व्यक्तिके मन, बुद्धि एवं अहंकार तीनों ही लोभसे आक्रान्त हो गये हैं और जैसे त्रिधातु ही कुपित हो गये हैं। पहले तो कामधेनुको पानेकी कामना उत्पन्न हुई, फिर उसपर आधिपत्यकी चेष्टा—यह लोभ है। फिर काम तथा लोभकी पूर्तिमें बाधा आनेपर क्रोध भी आ गया। वह क्रोध सात्त्विक नहीं बल्कि राजसी था, जिसने बढ़कर तामसी रूप ले लिया और जिसका दुष्परिणाम मुनिकी हत्या और परशुरामद्वारा

क्षत्रियोंके विनाशकी प्रतिज्ञाके रूपमें सामने आया। अतः लोभ ही समस्त प्रकारके अनर्थों और विनाशका मूल है, क्रोध आदि अन्य दुर्गुण तो उसके लक्षण हैं।

इस कथासे एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि कामधेनुसदृश कोई भी वस्तु उसीके पास रहनी चाहिये, जो उससे लोकका कल्याण करे, न कि वह उससे स्वयंके लिये भोग-विलासकी वस्तुओंका संग्रह करे। कामधेनु मुनिके लिये लोक-कल्याणकी वस्तु थी, उसीसे उन्होंने राजाका भी सत्कार किया था।

[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

भोगवाद और आत्मवाद

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृतिका लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति, और आजके जगत्का लक्ष्य है भोगप्राप्ति। इसीसे भारतीय सिद्धान्त है आत्मवाद या ईश्वरवाद और आजके जगत्का सिद्धान्त है भोगवाद। भगवान्ने गीतामें सर्वथा पतन या सर्वनाशका कारण बतलाया है भोगचिन्तन या विषयचिन्तनको। भगवान् कहते हैं—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २। ६२-६३)

'भोगोंके—विषयोंके चिन्तनसे उन विषयोंमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्तिसे [उनको प्राप्त करनेकी] कामना पैदा होती है। कामना सफल होनेपर लोभ और उसकी विफलतामें—कामपर चोट लगनेपर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध (या लोभ)-से सम्मोह होता है—पूरी मूढ़ता छा जाती है। मूढ़तासे स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृतिभ्रंश होनेपर बुद्धि मारी जाती है और बुद्धिके नाशसे सर्वनाश होता है।'

ये सर्वनाशके आठ स्तर हैं। इनमें सबसे पहला है विषयोंका—भोगोंका चिन्तन। इसीसे अन्तमें बुद्धिनाश होकर सर्वनाश होता है। भोग जिसके जीवनका लक्ष्य होगा, भोगवाद ही जिसका सिद्धान्त होगा—वह व्यक्ति हो, चाहे व्यक्तियोंका समुदाय समाज हो, समाजोंसे भरा देश हो, देशोंका समूह राष्ट्र हो या राष्ट्रोंका समुदाय विश्व हो'—जहाँ भोगवाद है, वहाँ भोगचिन्तन है और जहाँ भोगचिन्तन है, वहीं परिणाममें सर्वनाश है। भगवान्ने भोगजनित सुखको पहले मधुर लगनेवाला, परंतु परिणाममें विषके सदृश बतलाया है। वे कहते हैं—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर जो पहले अमृतके समान [मधुर] लगता है, परंतु जो परिणाममें विषके तुल्य [कार्य करता] है, वह सुख राजस कहलाता है।

एक जगह भोग-सुखको भगवान्ने दु:खोंकी उत्पत्तिका स्थान—दु:खरूप फलका खेत बतलाया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

अर्थात् इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न जो सब भोग हैं, वे नि:सन्देह दु:खके उत्पत्ति-स्थान हैं तथा आदि-अन्तवाले अनित्य हैं, भैया अर्जुन! बुद्धिमान् पुरुष उनमें प्रीति नहीं करता।

अवश्य ही भारतीय संस्कृतिमें भोगका बहिष्कार नहीं है—अर्थ और कामका तिरस्कार नहीं है, परंतु वे जीवनके लक्ष्य नहीं हैं। भोग रहें, पर रहें धर्मके नियन्त्रणमें, और उनका लक्ष्य हो मोक्ष या भगवत्प्राप्ति। पुरुषार्थचतुष्टयमें इसीलिये अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारोंको स्थान है। धर्मनियन्त्रित अर्थ-काम भगवत्सेवामें नियुक्त होकर मोक्षकी प्राप्तिके साधन बनते हैं और वे ही 'अर्थ-काम' जीवनके लक्ष्य बनकर मनुष्यको घोर अशान्ति तथा चिन्तामय जीवन बितानेको बाध्य करके अन्तमें नरकोंकी यन्त्रणामें पहुँचा देते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—'अर्थ' और 'काम' में फँसे लोग कुत्ते और बन्दरोंके समान हो जाते हैं। (१। १८। ४५) धनलक्ष्मी रहे, वह परम मंगलमयी है, पर वह तभी मंगलमयी है, जब सर्वव्यापी—प्राणीमात्रके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् विष्णुकी सेविका होकर रहती है। नहीं तो, उसे अपनी भोग्या बनाकर तो मनुष्य महापाप करता है, जिससे उसका निश्चित पतन होता है।

हमारे इस 'धर्म' से किसी वादका लक्ष्य नहीं है या केवल अध्यात्मविचार ही धर्म नहीं है। धर्म उस

निष्ठा, विचार और क्रियापद्धतिका नाम है, जो सबको धारण करता है। जिससे मनुष्यका सात्त्विक उत्थान हो, जो प्राणीमात्रका हित तथा सुखका साधन हो तथा अन्तमें निःश्रेयस या मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला हो, वही धर्म है—**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।** (वैशेषिक० १। २)

श्रीवाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीरामजी

लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके
समीक्षिता धर्मफलोदयेषु।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे
भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा॥
यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा
धर्मो यतः स्यात् तदुपक्रमेत।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके
कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता॥

(अयोध्याकाण्ड २१। ५७-५८)

धर्मके फलस्वरूप सुख-सौभाग्यादिकी प्राप्तिमें जो धर्म, अर्थ और काम देखे जाते हैं, वे तीनों एक धर्ममें वर्तमान हैं। धर्मके अनुष्ठानसे ही तीनोंकी सिद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं है। वैसे ही जैसे, पतिके अधीन रहनेवाली भार्या अतिथि-पूजनादिरूप धर्ममें, मनोऽनुकूल होनेसे काममें और सुपुत्रवती होकर अर्थमें सहायिका होती है। जिस कर्ममें धर्म, अर्थ, काम—तीनों संनिविष्ट न हों, परंतु जिससे धर्मकी सिद्धि होती हो, वही कर्म करना चाहिये। जो केवल अर्थपरायण होता है, वह लोकमें सबके द्वेषका पात्र बन जाता है और धर्मविरुद्ध कामभोगमें आसक्त होना भी प्रशंसा नहीं, निन्दाकी बात है।

भोगवादी इस धर्मकी परवा नहीं करता। उसका निश्चित सिद्धान्त ही होता है कामोपभोग—

कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥

(गीता १६। ११)

विषयभोगोंमें लगे मनुष्य बस, यही सब कुछ है—ऐसा निश्चितरूपसे मानते हैं।

यह आसुरी सम्पदावाले असुर-मानवका निश्चित सिद्धान्त है।

भोगवाद ही आसुरी सम्पदा है या आसुरी सम्पत्ति ही भोगवाद है।

भोगवादी या असुर-मानव धर्मको नहीं मानता, वह भगवान्‌का भजन तो करता ही नहीं। भगवान्‌ने उसके लिये कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

(गीता ७। १५)

'आसुरीभावका समाश्रयण किये हुए मायाके द्वारा अपहृत ज्ञानवाले दूषित कर्म करनेवाले नराधम मूढ़ मुझको (भगवान्‌को) भजते ही नहीं।' भगवान्‌को नहीं भजते, भोगमें ही लगे रहते हैं, इसीसे वे नराधम तथा मूढ़ हैं।

ऐसे भोगवादी असुर-मानवको जीवनमें मिलते हैं—चिन्ता, अशान्ति, कामनाजनित पाप तथा मृत्युके बाद नरकोंकी प्राप्ति तथा बन्धन। यथा—

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।

(गीता १६। ११)

मृत्युके अन्तिम क्षणतक अपरिमित चिन्ताओंसे घिरे

रहते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः॥

(गीता १६। १६)

मोहजालसे समावृत अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्त (अशान्त) रहते हैं।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

श्रीभगवान्ने कहा—'रजोगुण (विषयासक्ति)-से उत्पन्न यह काम ही [चोट खाकर] क्रोध बन जाता है। यह काम कभी तृप्त न होनेवाला महापापी है। [मनुष्योंके द्वारा होनेवाले पापोंमें] यह काम ही वैरीका काम करता है—इसीसे पाप होते हैं, ऐसा समझो।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

(गीता १६। १६)

विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त लोग अपवित्र नरकोंमें पड़ते हैं।

दैवीसम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता॥

(गीता १६। ५)

दैवी सम्पदासे मोक्ष मिलता है और आसुरीसे बन्धन। यही मत है।

भोगवादी आसुर-मानवका 'कामक्रोधपरायण' होना अनिवार्य है।

भोगवादका विष हमारी भारतीय संस्कृतिमें नहीं था, यह पाश्चात्य जगत्से यहाँ आया है और अब तो समस्त विश्वमें इतने भयानक रूपमें इसका प्रसार हो रहा है कि दिन-रात सर्वत्र सभी क्षेत्रोंमें भोगचिन्तन ही मनुष्यका स्वभाव-सा बन गया है और यह निश्चित है कि भोग-चिन्तनका परिणाम बुद्धिनाश और बुद्धिनाशके द्वारा सर्वनाश होता है। भोगवादका ही यह विषमय परिणाम है कि आज भारतमें भी पाश्चात्य जगत्की भाँति प्रायः सभी प्रचलित मत, वाद भोगदृष्टिसे ही अपने कर्तव्यका विचार करते हैं। इसीसे सर्वत्र दलबंदी, कलह, द्वन्द्व, एक-दूसरेको गिरानेकी चेष्टा, एक ही धर्म-मतमें परस्पर निन्दा तथा पतनकी चेष्टा आदि हो रही है। यह धर्मरहित राजनीतिका अवश्यम्भावी परिणाम है। हमारे यहाँ मनुमहाराजने राजाको शिकार, द्यूत, दिवानिद्रा, परदोषकथन, स्त्रीसहवास, मद्यपान, नाचना, गाना, बजाना और व्यर्थ भ्रमण—इन कामजनित दस दोषोंसे तथा चुगली, अनुचित साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरेके गुणोंमें दोषारोपण, द्रव्यहरण, गाली, कठोरता—इन क्रोधजनित आठ दोषोंसे बचनेके लिये कहा है। पर आज यही सब दोष जीवनके आवश्यक अंग या स्वभाव-से बन गये हैं। ऐसा होना भोगवादी असुर-मानवके लिये अनिवार्य है; क्योंकि वह तो इन्हींको गुण मानता है।

यह चीज केवल धर्महीन राजनीतिक क्षेत्रमें ही नहीं है, भोगवादीके द्वारा केवल भोगप्राप्तिके लिये स्वीकृत कोई भी जीवननिर्वाहकी या लौकिक उत्थान-अभ्युदय अथवा प्रगतिकी पद्धति भोगचिन्तन तथा अन्तमें बुद्धिनाशके द्वारा सर्वनाश करानेवाली होती है। इसी कारण आज हमारे सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक, नैतिक—सभी क्षेत्रोंमें बड़ी तेजीके साथ दैवीसम्पत्तिका ह्रास तथा आसुरीका विकास हो रहा है। जो अन्तमें महान् विनाश या घोर पतनका कारण होगा।

भोगवादी असुर-मानव क्या सोचता-करता है तथा उसका परिणाम क्या होता है, इसपर भगवान् कहते हैं—

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। १३ से १५, १८ से २०)

'मैंने आज यह कमाया है, अपने इस मनोरथको भी मैं अवश्य प्राप्त करूँगा। मेरे पास यह इतना धन तो है, फिर और भी मिलेगा। [मेरे काममें बाधा देनेवाला] वह शत्रु तो मेरेद्वारा समाप्त कर दिया गया है, जो दूसरे और हैं उनको भी मैं मार डालूँगा। मैं शासक—ईश्वर हूँ, मैं ऐश्वर्यका भोगी हूँ, मैं सफल-जीवन हूँ, मैं बलवान् और सुखी हूँ। मैं बड़ा धनवान् हूँ, मैं अभिजनवान्—जनताका नेता हूँ, मेरे समान दूसरा है कौन? मैं [बड़े-बड़े] यज्ञ-सेवाके कार्य करूँगा, मैं बड़े-बड़े दान दूँगा और मेरे मोदका पार नहीं रहेगा। इस प्रकार अज्ञानसे मोहित वे असुर-मानव मनोरथ किया करते तथा डींग हाँका करते हैं।'

'इस प्रकार जो अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोधके आश्रित, गुणियोंमें भी दोषारोपण करनेवाले तथा दूसरोंके शरीरोंमें स्थित मुझसे (भगवान्से) बड़ा द्वेष करते हैं, उन द्वेष करनेवाले, अशुभकर्ता, निर्दय, नराधमोंको मैं (भगवान्) संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ। भैया अर्जुन! वे मूढ़ पुरुष मुझको (भगवान्को) न पाकर जन्म-जन्ममें (बार-बार) आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं; तदनन्तर और भी अधम गति (नरकादि)-में जाते हैं।'

आजके युगके भोगवादी मानवका यह प्रत्यक्ष चित्र है। सारा विश्व ही आज इन आसुरी भावोंका समाश्रयण किये हुए अपने विनाशका पथ प्रशस्त कर रहा है। सभी भोग-चिन्तनपरायण हैं; कोई मान्य-यशकी कामना करता है तो कोई अधिकार-सत्ताकी, तो कोई धन-वैभवकी—इसीसे सभी ओर छीना-झपटी हो रही है।

भारतीय संस्कृतिका जो 'कर्तव्य' तथा 'त्याग' का उज्ज्वल आदर्श था, उसकी जगह आज 'अधिकार' तथा 'भोग' ने ले ली है। सभी लोग 'अधिकार' और 'अर्थ' या 'भोग' के पीछे उन्मत्त हैं। 'कर्तव्य' तथा 'त्याग' होनेपर उचित अधिकार तथा अर्थ-भोग अपने-आप आते हैं। राम और भरतका इतिहास इसका साक्षी है। कर्तव्य तथा त्यागके कारण दोनोंके अधिकार कायम रहे—दोनों ही उचित अर्थके भागी हुए।

हमारा आदर्श ही था कर्तव्यमय त्याग। अमृतत्वकी प्राप्ति त्यागसे ही होती है। उपनिषद्की वाणी है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः॥

कर्मसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, एक त्यागसे ही कोई अमृतत्वको प्राप्त होते हैं—इसीसे वेदका उपदेश है—

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(शुक्लयजुर्वेद ४०। १)

अखिल विश्वमें जो कुछ भी जड़-चेतन जगत् है, वह सब ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत होओ। किसीके भी धनकी इच्छा न करो।

आज यह बात उपहासकी-सी वस्तु बन गयी है। आज तो प्रत्येक वस्तुका मूल्यांकन होता है—आर्थिक या भोगदृष्टिसे ही। आत्माका प्रकाश करनेवाली 'शिक्षा' भी आज भोगदृष्टिसे ही होती है। प्रत्येक वस्तुपर इसी दृष्टिसे विचार किया जाता है कि इसमें आर्थिक लाभ है या नहीं? पंचवर्षीय योजनाएँ, शिक्षा-कला-विस्तार, नये-नये कारखाने, दवा-उद्योग, कसाईखाने, हिंसा-उद्योग—सब इसी दृष्टिसे खोले तथा चलाये जाते हैं। धर्मकी कहीं कोई आवश्यकता ही नहीं। यह सब भोगवादके विषका ही विषैला प्रभाव है।

भोगवादके विषसे आक्रान्त होनेके कारण ही आज भारतके बड़े-बड़े अध्यात्मवादी विद्वान् भी, पाश्चात्य भोगवादी विद्वान् बुरा न बता दें, इसके लिये अपनी संस्कृतिके परम्परागत सम्मान्य सिद्धान्तोंको

तथा इतिहासोंको भी यथार्थरूपमें प्रकाश करनेमें हिचकते हैं और उन्हें विकृत करके उनके मतानुकूल बतानेका प्रयत्न करते हैं। यह मस्तिष्कका दासत्व बड़ा ही शोचनीय तथा घातक है। इसीसे हमारे प्राचीन इतिहास तथा ऐतिहासिक घटनाओंके काल बदलनेकी और सबको तीन हजार वर्षके अन्दर लानेकी चेष्टा की जा रही है और दुःखका विषय है कि हमारे विद्वान् इन बातोंको स्वीकार करते चले जा रहे हैं। किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रको यदि गिराना हो तो उसका प्रधान साधन है—उसके आत्मगौरव तथा आत्मविश्वासको मिटा देना—उसके अपनेमें हीनताका बोध करा देना। यह काम पाश्चात्य विद्वानोंने सफलतापूर्वक सम्पन्न किया और इसीसे भारत अपनेमें हीनताका बोध करके सहज ही मस्तिष्कका दासत्व स्वीकारकर परमुखापेक्षी तथा परानुकरणपरायण हो गया। विदेशी भाषा, विदेशी वेषभूषा, विदेशी खान-पान, विदेशी रहन-सहन तथा विदेशी ज्ञानको गौरवके साथ ग्रहण करना—हमारी इस आत्महीनताके बोधका ही सहज परिणाम है। पाश्चात्य विद्वानोंने भ्रमसे या किसी कुटिल अभिसन्धिसे इन तीन महाभ्रमोंका प्रतिपादन और प्रचार-प्रसार किया—

१. आर्यजाति बाहरसे आयी है। भारतवर्ष उसका मूल निवास-स्थान नहीं है।

२. चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं है।

३. जगत्‌में उत्तरोत्तर विकास—उन्नति हो रही है।

मस्तिष्ककी गुलामीके कारण अधिकांश भारतीय विद्वानोंने इन तीनों बातोंको स्वीकार कर लिया। उसीका फल है कि आज हम भारतीयोंकी अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने पूर्वज तथा अपने गौरवमय महाभारत, रामायणादि प्राचीन इतिहास, अपने धर्मग्रन्थ वेद-स्मृति-पुराण आदिपर अश्रद्धा और अनास्था बढ़ रही है और इसीसे भोगवादके विष-विस्तारमें बड़ी सुविधा हो गयी है। इसीसे आज हम तमसाच्छन्न होकर सभी कुछ विपरीत देखने, विपरीत सोचने और विपरीत करनेमें गौरव मान रहे हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(१८। ३२)

'अर्जुन! तमोगुणसे आवृत जो बुद्धि अधर्मको धर्म, [अवनतिको उन्नति, विनाशको विकास, पतनको उत्थान, पापको पुण्य इस प्रकार—] सभी अर्थोंमें विपरीत मानती है, वही तामसी बुद्धि है।'

आजका संसार भोगवादके विषसे जर्जरित होनेके कारण तमसाच्छन्न होकर इसी तामसी बुद्धिके द्वारा अपने कर्तव्यका निश्चय करता है और तदनुसार चल रहा है। भारतवर्ष भी आत्मविस्मृत होकर इसी तामसी बुद्धिका आश्रय ले रहा है!

भारतने यदि अपने पूर्वज ऋषि-महर्षि तथा अपनी प्राचीन संस्कृति एवं धर्मग्रन्थोंपर विश्वास करके अपनी अत्यन्त प्राचीन सर्वांगसम्पन्न सर्वांगसुन्दर आत्मवादी आदर्श संस्कृतिको न अपनाया तो इसका परिणाम उसके लिये तथा समस्त जगत्‌के लिये भी बहुत बुरा होगा; क्योंकि यही देश तथा यहींकी संस्कृति अनादिकालसे अध्यात्मप्रधान आत्मवादी रही है। आज भी वर्तमान जगत्‌की स्थितिसे असन्तुष्ट यूरोप तथा अमेरिकाके बहुत-से सज्जन सच्चे सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिये आत्मवादी भारतवर्षकी ओर ताक रहे हैं और बहुत-से तो यहाँ आ-आकर अध्यात्मकी शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। पर जब भारत ही भोगवादी हो जायगा, तब तो जगत्‌की सारी आशा ही लुप्त हो जायगी। भारत आज इसी भोगवादके मोहजालमें फँसा है। भारतके मनीषियोंको गम्भीरतापूर्वक इसपर विचार करके किसी प्रकाशमय पथका पता लगाकर उसपर आरूढ़ होना चाहिये। हरिः ॐ तत्सत्

पुरुषार्थ

(श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)

पुरुषार्थ नाम है मनुष्यके उस उद्योग या हिम्मतका, जो अपने हित साधनेके लिये और अहितसे बचनेके लिये वह करता है। यह फलतः पराक्रमरूप ही होता है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो अच्छे कर्म करना और खोटेसे बचते रहना अर्थात् पुण्यजनक शुभ कर्म करना और अशुभ कर्मोंको त्यागना कि वे आगे कभी भी न बन पायें, पुरुषार्थ है। शुभ कर्मोंको भी इस प्रकार करना कि वे संस्काररूपमें मनमें बने रहें। सब अशुभों और अवगुणोंको त्यागना और सब गुणोंको एकत्र करना पुरुषार्थका सच्चा रूप है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, मत्सर, मद और अधैर्य इत्यादि सब अशुभ गुण हैं। इसी प्रकार वैराग्य, क्षमा, सन्तोष, मैत्री, धैर्य इत्यादि शुभ गुण हैं, ये बिना बड़े परिश्रमके धारण नहीं किये जा सकते। इनके लिये निरन्तर यत्न बनाये रखना चाहिये, ताकि ये सदा बनते रहें। यही सब पुरुषार्थ है। वैसे ही काम, क्रोध इत्यादि जितने भी विकार हैं, ये सब पशु-पक्षीके समान मनुष्योंमें भी बिना यत्नके आते रहते हैं और सब अशुभ कर्म करवाते हैं। इनको भी यत्न और परिश्रमसे टालते रहना, यह सब पुरुषार्थ है।

वैसे तो धर्मग्रन्थोंमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ बतलाये गये हैं। परंतु यदि किसी उद्देश्यविशेषको पूर्ण करनेके लिये मनुष्य यत्न करता है, तो पुरुषका वह प्रयोजन भी 'पुरुषार्थ' शब्दसे निरूपित किया जाता है। मनुष्यको धर्मका आचरण करना उसके भावी सुखरूप प्रयोजनके लिये है। इसी प्रकार लौकिक सुखहेतु धन-उपार्जन भी पुरुषका पुरुषार्थरूप प्रयोजन है और प्रकृतिकी जगत् चलानेवाली शक्ति काम या कामसुखकी भी पुरुषार्थरूपसे ही पुराने लोगोंने गणना (गिनती) की है। इस कामसुखका जनसाधारण त्याग नहीं कर सकता। बलसे, बिना पूर्ण ज्ञानके त्यागनेपर मनुष्यका सन्तुलन भी दैवी शक्ति नष्ट कर सकती है, जिससे कि वह अपने जीवनका भी सदुपयोग उचित प्रकारसे न कर पाये। इसलिये पुराने ऋषियोंने इसे भी पुरुषार्थरूपसे स्वीकार किया है। वास्तवमें तो यह प्रकृतिकी सहज प्रेरणाके फलस्वरूप सबको प्राप्त ही है। मनुष्यका सबसे उत्तम और वास्तवमें पाने एवं चाहनेका तो मोक्षरूपी प्रयोजन होना चाहिये। इसीलिये इसको अन्तमें कहा जाता है और इसीके निमित्त उत्तम मोक्षोपयोगी धर्म भी पुरुषार्थरूपसे ही समझा जाता है।

अस्तु, जो भी कोई प्रयत्न पुरुष करता है, उसे पुरुषार्थरूपसे कहा जा सकता है। परन्तु शुभकारी धर्मद्वारा मोक्ष ही सब पुरुषोंका परम प्रयोजनरूप पुरुषार्थ सबके लिये निर्विवादरूपसे मान्य होता है; क्योंकि संसारके सुखोंको भोगते-भोगते जो दुःख उत्पन्न हो गये, उनसे मुक्ति या मोक्ष कौन नहीं चाहेगा? परन्तु यह संसार-बन्धन जबतक मनसे न उतरे, तबतक असम्भव है कि इनके दुःखसे मोक्ष प्राप्त हो। इसलिये आत्मामें अर्थात् अपने-आपमें ही प्रतिष्ठा पानेपर यह संसार या भव-बन्धन छूटेगा और तभी आत्माका सुख व्यक्त होगा, तो ही मोक्ष प्राप्त हुआ समझा जायगा। इसलिये मोक्ष ही सबकी इच्छाका पुरुषार्थ है; सबका परम प्रयोजन है। [प्रेषक—श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग]

द्वौ हुडाविव युध्येते पुरुषार्थौ समासमौ। प्राक्तनश्चैहिकश्चैव शाम्यत्यत्राल्पवीर्यवान्॥

पूर्वजन्मका पुरुषार्थ (अर्थात् भाग्य) और इस जन्मका पुरुषार्थ, कभी सम-शक्ति होकर और कभी असम शक्ति होकर, दो मेढ़ोंकी तरह, परस्पर युद्ध करते हैं। उनमेंसे जो अल्प शक्तिवाला होता है, वह हार खा जाता है। [योगवासिष्ठ २।५।५]

कामनाका त्याग

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌के निरन्तर चिन्तन एवं कामनाके त्यागकी बात विशेषरूपसे कही गयी है। हमारा संसारके साथ सम्बन्ध कामनाके कारण ही प्रतीत हो रहा है; यथार्थतः वह है नहीं। कामनाके नष्ट हो जानेपर संसारके साथ इस कल्पित सम्बन्धका भी नाश हो जाता है एवं भगवान्‌के साथ अनादिकालीन वास्तविक सम्बन्धकी स्मृति हो आती है। भगवान्‌के साथ इस नित्य सम्बन्धको पहचानते ही जीवको महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि दुःखका मूल कारण कामना ही है, अन्य कोई नहीं।

गीतामें अर्जुनने भगवान्‌से पूछा कि मनुष्य न चाहता हुआ भी पापका आचरण क्यों करता है? इसके उत्तरमें भगवान्‌ने कहा है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(३।३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है। यह भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है। इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।'

संग्रह एवं सुखभोगकी इच्छाके कारण ही मनुष्यकी पापोंमें प्रवृत्ति हो जाती है। भगवान्‌ने इसीको मनुष्यका सबसे प्रबल शत्रु कहा है। इसके फंदेमें फँसनेपर मनुष्य ऐसे-ऐसे अनर्थ कर बैठता है, जिनका दुष्परिणाम उसे अनन्त नरकों एवं आसुरी योनियोंमें भोगना पड़ता है, अतः इस दुर्जय शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करनी चाहिये।

मन, बुद्धि एवं इन्द्रियाँ—ये ही कामके वासस्थान हैं। मूलतः जहाँ व्यक्तिका—'मैं हूँ'—अपना होनापन है, वहीं काम रहता है। इसी प्रकार परमात्मप्राप्तिकी इच्छा भी स्वयंमें ही रहती है। स्वयं परमात्माका अंश है तथा सांसारिक कामना प्रकृतिका अंश है। परमात्माका अंश मिट नहीं सकता एवं सांसारिक कामना टिक नहीं सकती। किंतु न मिटनेवाले स्वयंने मिटनेवाली कामनाको पकड़ लिया; फलस्वरूप जन्म-मरणका चक्र चालू हो गया—जीव दुःखके बवण्डरमें फँस गया। इस दुःखपूर्ण परिस्थितिसे छुटकारा पानेके लिये साधकको सर्वप्रथम अपने 'मैंपन' से ही कामको निकाल देना चाहिये। मैंपनसे कामके निकलते ही मन, बुद्धि एवं इन्द्रियोंसे यह स्वतः ही निकल जायगा। अतः सांसारिक आसक्ति एवं सुखभोगकी इच्छाका नाश होकर साधकको महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जायगी।

प्रश्न हो सकता है कि स्वयं तो चेतनका अंश है, इसमें जड़ताका अंश काम कैसे घुस आया? चेतनके अंशमें तो चेतन परमात्माकी प्राप्तिकी ही इच्छा रहनी चाहिये, न कि सांसारिक कामना की। इसका समाधान यह है कि वस्तुतः 'मैं हूँ' में 'मैं' जड़ताका अंश है एवं 'हूँ' परिपूर्ण सत्ता है। 'मैं' के कारण ही यह सत्ता 'हूँ' है, अन्यथा सर्वत्र 'है' ही है। 'मैं' के हटनेसे (जो कि जड़ताका अंश है) सांसारिक कामना भी हट जाती है एवं 'हूँ' 'है' हो जाता है। यथार्थतः चेतनके अंशमें परमात्मप्राप्तिकी इच्छा है एवं जड़ताके अंशमें सांसारिक कामना है। 'स्वयं'में परमात्मप्राप्तिकी प्रबल इच्छा होनेपर वहाँसे सांसारिक कामनारूप जड़ताका अंश निकल जाता है, अतः साधकको नित्यप्राप्त तत्त्वका बोध हो जाता है।

अतएव 'मैंपन'से कामको हटानेका यही सुन्दर साधन है कि भगवत्प्राप्तिकी इच्छाको अधिक-से-अधिक प्रबल किया जाय। यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि चाहे सुख मिले, दुःख मिले, मान मिले, अपमान मिले, भोजन-वस्त्रादि मिले या न मिले—इसकी कोई परवा नहीं, किंतु भगवान्‌की प्राप्ति करके ही छोड़ेंगे। यह भाव जितना अधिक दृढ़ होगा, उतनी ही अधिक भोगेच्छाका नाश होगा। अतएव सर्वप्रथम अपना उद्देश्य सुदृढ़ बनाना चाहिये।

इससे ऊँची बात यह है कि भगवत्प्राप्तिका हमारा यह उद्देश्य तो जन्मसे पहलेका ही बना हुआ है, मनुष्य-जन्म केवल इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये दिया गया है। अत: केवलमात्र इस उद्देश्यको पहचानना ही है। पहचाननेकी कसौटी यह है कि साधकको फिर भोग अच्छे नहीं लगेंगे, मान-बड़ाई, अनुकूलता, संग्रह आदि उसे कड़वे प्रतीत होने लगेंगे।

गीतामें भगवान्‌ने एक दृढ़ निश्चयात्मिका बुद्धिकी बड़ी भारी प्रशंसा की है। चाहे कैसा भी पापी क्यों न हो, भगवत्प्राप्तिका दृढ़ निश्चय होनेपर भगवान् उसे धर्मात्मा ही माननेको तैयार हैं। ऐसा दृढ़ निश्चय अभी-अभी ही हो सकता है। इसमें न भविष्यकी अपेक्षा है, न किसी के सहारेकी। अत: भगवत्प्राप्तिके सम्बन्धमें अपना उद्देश्य सुदृढ़ बना लेना चाहिये। इसमें किसी भी प्रकारकी कच्चाई सहन नहीं होनी चाहिये। लोगोंकी यह एक भारी भूल है कि वे परमात्मप्राप्तिके साथ-साथ सांसारिक सुख भी प्राप्त करना चाहते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे साधन-पथसे भटक जाते हैं एवं अपने लक्ष्यको सुदृढ़ नहीं बना पाते—

दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।

जैसे कन्याका विवाह हो जानेपर वह पतिके घरको ही अपना घर मानती है, अपने माता-पिताके घरको नहीं; उसी प्रकार भगवत्प्राप्तिके कार्यको ही अपने जीवनका वास्तविक कार्य एवं उद्देश्य मानना चाहिये, न कि सांसारिक सुख-भोग एवं संग्रहको। परमात्माका घर ही हमारा वास्तविक घर है, अतएव परमात्माकी ओर ही पूरी शक्तिसे बढ़ना चाहिये। इस सम्बन्धमें अपना विचार पक्का कर लेना चाहिये, फिर तो सभी सुविधाएँ स्वत: उपलब्ध होंगी। बाधा डालनेवाले प्रथम श्रेणीके सहायक सिद्ध होंगे। अहंतामें परिवर्तन होनेसे भगवत्प्राप्तिका यह मार्ग बहुत ही सुगम हो जाता है। अपनी सुनिश्चित मान्यता कर लेनी चाहिये कि मैं भोगी, संग्रही नहीं हूँ। संसारका काम मेरा काम नहीं है। मैं तो भगवान्‌के पथका पथिक हूँ, साधक हूँ, जिज्ञासु हूँ। तत्त्वको प्राप्त करना, भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करना ही मेरा एकमात्र कार्य है। इस प्रकार अहंताके बदलते ही काम अपने वास-स्थानोंसे निकल भागेगा एवं साधन-पथकी सभी कठिनाइयाँ स्वत: समाप्त हो जायँगी। कामके वास-स्थानोंपर अनायास ही अधिकार हो जायगा।

जगत मुसाफिरखाना

(श्रीगेंदनलालजी कन्नौजिया)

चलो पथिक बन, डगर न छोड़ो जगत मुसाफिरखाना।
सम्बन्धों की डोर क्षीण अति, सब कुछ यहाँ विराना॥

जिनको पाला बड़े यत्न से ममता मोह जगाकर।
सुख-सुविधाएँ सघन जुटाईं अपना-पन दिखलाकर॥
न्याय नीति को बिसरा करके अधरम खूब कमाया।
धन-दौलत परिवार प्रगति हित, निज कर्तव्य भुलाया॥
स्वार्थवाद की आँधी में अब रहा न शेष ठिकाना।
चलो पथिक बन, डगर न छोड़ो जगत मुसाफिरखाना॥ १॥

झूठे प्रेम जाल में वनिता के फँस सब कुछ भूले।
उसके नयन बाणसे बिंधकर गोते खाये, झूले॥
चंचलता जब शिथिल हुई दूरी बढ़ने लगती है।
परिवर्तन की झलक चेतनाका स्वर उर धरती है॥
माया जनित सकल जड़ता को मनसे दूर भगाना।
चलो पथिक बन, डगर न छोड़ो जगत मुसाफिरखाना॥ २॥

पर हित पर उपकार भाव नित उपदेशों में रहते।
मित्र मित्रता विस्मृत करके अपनी धुन में बहते॥
करुणा, प्रेम और मानवता पंगु लगी अब होने।
शाश्वत, समता, सरल भावना नश्वरता में खोने॥
विषम तमस में भी अपने उर शुचिता को अपनाना।
चलो पथिक बन, डगर न छोड़ो जगत मुसाफिरखाना॥ ३॥

कर विचार सच को स्वीकारो, भौतिकता परिहारो।
पूर्व प्रतिज्ञा गर्भवास की, उसको जरा विचारो॥
मानव जीवन मिला इसलिए चौरासी कट जाये।
जन्म-मृत्यु से हो छुटकारा भव बन्धन हट जाये॥
सांसारिक सुख क्षण भंगुर जो उनसे मत लिपटाना।
चलो पथिक बन, डगर न छोड़ो जगत मुसाफिरखाना॥ ४॥

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें युगलतत्त्व

(गोस्वामी श्रीविष्णुकान्तजी महाराज, श्रीनिम्बार्कपीठ, प्रयाग)

भगवद्भावसे द्रवित होकर भगवान्‌के साथ चित्तका जो सविकल्प तदाकारभाव है, वही भक्ति है। भक्ति गौणी और शुद्धाके भेदसे दो प्रकारकी है। शास्त्रोंके नियमोंके अनुसार विधि-निषेध होनेसे गौणीके अनन्त भेद हैं। जो अनन्त होता है, वह एक ही माना जाता है। जैसे ब्रह्म अनन्त होते हुए एक हैं, वैसे ही भक्ति भी एक ही है, इसके भेद काल्पनिक हैं। भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण हो जानेके कारण भक्तिमें नियमवशवर्तिता नहीं होती। इनमें भी अनन्यता हो जाती है। शुद्धाको ही प्रेमाभक्ति, केवला भक्ति, अनन्याभक्ति, पराभक्ति आदि पदोंसे कहा गया है। भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यके अनुसार भगवत्कृपासे भक्तोंमें जो प्रेमस्वरूपा भक्ति प्रकट होती है, वही उत्तमा, साधनरूपिका और पराभक्ति है—

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते
यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः
सा चोत्तमा साधनरूपिका परा॥

नारदपांचरात्रमें भी कहा गया—

सुरर्षे विहितशास्त्रे हरिमुद्दिश्य या क्रिया।
सैव भक्तिरिति प्रोक्ता यथा भक्तिः परा भवेत्॥

भगवान्‌के लिये ही जो जगत्‌के सारे कार्य किये जाते हैं, वह पराभक्ति कही गयी है। यही भक्ति कृष्णप्रिया है और परमानन्ददायिनी है। नारदभक्तिसूत्रमें लिखा है—इस भक्तिको प्राप्तकर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। भागवतमें कहा है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन''' निष्काम हो या कामनाओंमें आसक्त हो अथवा मुमुक्षु ही क्यों न हो, उसे प्रगाढ़ भक्तिके द्वारा परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णका ही भजन करते रहना चाहिये। मधुसूदन सरस्वतीजी भी यही कहते हैं—'**कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।**' भगवत्पाद शंकराचार्यजीका भी यही मत है—

श्रीकृष्णचरणाम्भोजं सत्यमेव विजानताम्।
जगत्सत्यमसत्यं वाप्नोति नेति मतिर्मम॥

श्रीकृष्णके चरणोंको ही मैं सत्य मानता हूँ। जगत् सत्य है या असत्य है—यह मेरा मत नहीं है।

भगवान्‌के अनेक रूप हैं, जिसमें राधिकासहित युगलरूप ही परमतत्त्व होनेके कारण पूज्य है तथा वह ही भगवन्निम्बार्काचार्यजीका आराध्य है। केवल कृष्ण ही उनके उपास्य नहीं; क्योंकि गौतमीयतन्त्रकी आज्ञा है—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी नरः॥

जो गौरतेज राधिकाके बिना श्यामतेज कृष्णका पूजन-ध्यान और जप करते हैं, वे पापी हैं। ऋग्वेदके परिशिष्टमें भी कहा है—

'**राधया माधवो देवो माधवेन च राधिका विभ्राजते जनेष्वा।**'

राधा माधवसे और माधव राधिकासे ही सुशोभित होते हैं। '**अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा**' अर्थात् वामांगमें श्रीराधिका विराजमान (रहती) हैं। इस श्लोकमें श्रीनिम्बार्कभगवान्‌का भी यही अभिप्राय है। ये राधापति द्विभुज और नित्य गोलोकवासी हैं। '***श्यामागोरी नित्यकिशोरी प्रीतम जोरी श्रीराधे***'—महावाणी।

पद्मपुराणमें भी—

सदैव द्विभुजः कृष्णो न कदाचिच्चतुर्भुजः।
वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति॥

राधिका भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति और वृन्दावनाधीश्वरी हैं। भागवत-रासपंचाध्यायीमें शुकदेवजीने कहा है—'**आत्मारामोऽप्यरीरमत्**' आत्मा अर्थात् आह्लादिनी शक्तिमें रमण करनेवाले भगवान्‌ने रास किया। श्रीभट्टदेवजीके अनुसार '***पराभक्ति रसवर्धिनी राधा सब सुख देनी***'।

पराभक्तिको बढ़ानेवाली राधा सभी सुखोंकी दात्री हैं। भक्तिचन्द्रिकाके मतसे पराभक्ति ग्यारह प्रकारकी है—(१) गुणमाहात्म्यासक्तिभक्ति, (२) रूपासक्तिभक्ति, (३) पूजासक्तिभक्ति, (४) स्मरणासक्तिभक्ति, (५) दास्या-सक्तिभक्ति, (६) सख्यासक्तिभक्ति, (७) कान्तासक्तिभक्ति,

(८) वात्सल्यासक्तिभक्ति, (९) आत्मनिवेदनासक्ति, (१०) तन्मयतासक्ति एवं (११) परमविरहासक्ति।

मुख्यत: तो शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगारादिके भेदसे भक्ति पाँच प्रकारकी ही है। स्मरणाभक्ति ही शान्ताभक्ति है, इसमें उपास्य-उपासक-भावसे, दास्यमें स्वामी-सेवक-भावसे, सख्यमें बन्धुभावसे, वात्सल्यमें पोष्य-पोषक-भावसे और शृंगार-कान्तासक्तिमें पति-पत्नी भावसे उपासना होती है। अभीप्सित उन-उन भावोंके अनुसार ही भक्ति करनी चाहिये। आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति तो सभी भावोंमें समान रूपसे होती है।

श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायमें तो सख्यासक्ति तथा रूपासक्तिका ही आश्रय लिया गया है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीके '**सखी-सहस्त्रैः परिसेवितां सदा**' इस श्लोकसे यही भाव प्रकट होता है कि निकुंजमें श्रीप्रियाप्रियतमकी सेवामें सदा सहस्त्रों गोपांगनाएँ रहती हैं। अत: उस भावसे उपासना होती है। स्वयं आचार्य भी श्रीरंगदेवी सखीके रूपमें सदा प्रिया-प्रियतमकी सेवामें उपस्थित होते हैं। सख्यासक्ति दास्यासक्तिसे युक्त होती है। इसमें सेवा करनेका सुअवसर प्राप्त होता है। इसलिये गोपीजनोंकी भाँति ही सदा सख्यभावसे निकुंजमें सेवा करनी चाहिये। वस्तुत: गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं, बाकी तो सब उनकी प्रकृति ही हैं—

स एव वासुदेवोऽयं साक्षात् पुरुष उच्यते।
स्त्रीप्रायमितरत्सर्वं जगद् ब्रह्मपुरःसरम्॥

रासलीलामें तो भगवान् शंकर भी उस परब्रह्म परमात्माके साथ गोपीभावसे रमण करते हैं। औरोंकी तो चर्चा ही क्या है! भागवतमें श्रीब्रह्माजी उन गोपियोंकी भक्तिकी सराहना करते हैं—

अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥

उन गोपियोंमें ही तो प्रेमाभक्तिका परिपाक हुआ है; जैसा कि तन्त्रमें लिखा है, गोपियोंका प्रेम कामनायुक्त है, जिसकी अभिलाषा उद्धवादि भगवान्‌के भक्त करते हैं—

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः॥

उद्धवजी उन गोपीजनोंकी महिमाका मुक्तकण्ठसे गान करते हैं—

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।

कहाँ ये गाँवकी हीन गवाँर ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णमें यह अनन्यप्रेम! इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भी भगवान्‌के स्वरूप और रहस्यको न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे तो वे स्वयं अपनी शक्तिसे उसका कल्याण कर देते हैं। मेरे लिये तो अच्छा होगा कि मैं इस व्रजकी झाड़ी-लता अथवा जड़ी-बूटी बन जाऊँ। अहा! यदि ऐसा सम्भव होगा तो इन गोपवधूटियोंकी चरणरज नित्य सेवन करनेको मिलेगी, जिससे मैं धन्य हो जाऊँगा।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

वस्तुत: उन गोपियोंकी ऐसी शरणागति वन्दनीय है। भगवान्‌ने स्वयं भागवतमें कहा है कि गोपियोंका मन निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवनसर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्रादि सभी सम्बन्धियोंका त्याग कर दिया। उन्होंने मुझको अपना प्रियतम तथा आत्मा मान रखा है।

श्रीभगवान्‌की शास्त्रानुमोदित दाम्पत्य-भावसे उपासना करनेसे सांसारिक सभी विषय-वासनाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं। भगवान्‌का वचन है—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥

जिन्होंने अपने मन और प्राण मुझमें समर्पित कर रखे हैं, उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक विषयोंकी ओर नहीं ले जा सकतीं। जैसे कि भुने या उबले हुए बीजमें अंकुर नहीं निकल सकता। मैं उनकी समस्त कामनाएँ नष्ट कर देता हूँ।

इसलिये संसारसे पार होनेके लिये गोपियोंके समान ही अनन्य प्रीतिभावसे श्रीगोपीजनवल्लभकी सेवा करनी चाहिये।

व्रजमें होली खेलत राधा-कृष्ण

(श्रीउमेशप्रसादसिंहजी)

व्रजभूमि प्रेम और सौन्दर्यका दिव्यधाम है। यहाँ निवास करनेवाले गोप-गोपिकाएँ, गोपकुमार, गाय-बछड़े, वनके पशु-पक्षी सभी प्रेमके मूर्तिमान् विग्रह हैं। यहाँ राधा-कृष्णका प्रेम, नन्द-यशोदाका प्रेम, उनके प्रति भक्तोंका प्रेम जगजाहिर है। इस प्रेममय भूमिपर प्रेमोत्सवका सबसे बड़ा पर्व होलीका रंग अनूठा है।

व्रजभूमिपर होलीका रूप देशके अन्य भागोंसे अलग है, जिसे देखनेके लिये देश-विदेशके दर्शक आते हैं। पिचकारियोंद्वारा टेसूके फूलोंसे बने रंगसे एक-दूसरेको रंगमय करना यहाँकी प्राचीन प्रथा है। पण्डित रूपकिशोरजी लिखते हैं—

रंग चुचात भये गात लाल बाला गुपाल महिं दबदोरी।
खेल किशोरी हँसे घनश्याम सखा दै दै खोरी॥

यहाँ रंग-गुलालके साथ राधाजी और कान्हाजीकी टोलियोंके बीच घमासान मचता है तो सारा गगन-मण्डल लाल हो जाता है। इस लीलाका वर्णन करते हुए रसखानजीने लिखा है—

खेलत फाग सुहाग भरी अनुरागहिं लालन कों धरि कै।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन में रँग कों भरि कै॥
गेरत लाल गुलाल लली मनमोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली रसखानि अली मदमस्त मनों मन कों हरि कै॥
मिलि खेलत फाग बढ्यो अनुराग सुराग सनी सुख की रमकै।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी प्रिय के दृग लावन कौ धमकै॥
रसखानि गुलाल की धूंधर में व्रजबालन की दुति यौं दमकै।
मनौ सावन माँझ ललाई के माँझ चहूँ दिसि तें चपला चमकै॥

राधा एवं कृष्ण कलाकारोंके प्रेरणास्रोत रहे हैं। होलीमें राधा एवं श्रीकृष्णके साथ व्रज स्वत: याद आ जाता है। सूरदासने अनेक पदोंमें होलीके उमंगको दर्शाया है। कान्हा जब होली खेलते हैं, तब धरतीमाता राधारानीकी स्वर्ण पिचकारीसे छूटे रंगोंसे अपना श्रृंगार करती हैं। इन्हीं पलोंकी प्रतीक्षा करते-करते एक दिन ललिता सखीने राधारानीसे कहा—

तेरे आवैंगे आजु सखी हरि खेलन को फाग री।
सगुन संदेसौं हौ सुन्यौ तेरे आंगन बोले काग री॥
मदन मोहन तेरे बस माई, सुनि राधे बड़भाग री।
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ का सोवै उठि जाग री॥
चोबा चंदन लै कुमकुम अरु केसरि पैयाँ लाग री।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ राधा अचल सुहाग री॥

व्रजमण्डलके बठैनमें राधा-कृष्णका प्राचीन मन्दिर है। यहाँके लोग ठीक उसी प्रकार होली खेलते हैं, जैसे बरसाने नन्दगाँवके हुरियारे खेलते हैं। यहाँ शामको संगीत-समाज जुड़ता है। गाँवमें 'चौपाई' निकलती है। फिर होलीके गीत गाते हैं। व्रजकी गोपिकाएँ रंग-गुलालकी चोट तो सह लेती हैं, परंतु मतवारे नयनोंकी चोट सहना कठिन हो जाता है। वे घूँघटकी ओटमें इन चोटोंको बचानेका प्रयास करती हैं—

मत मारो दृगन की चोट, रसिया होरी में मेरे लग जायेगी,
अबकी चोट बचाय गई हूँ, करि घूँघट की ओट।
सास सुने मेरी ननद लड़ैगी, तुममें भरे बड़े खोट,
पुरुषोत्तम प्रभु वहाँ जाय खेलो, जहाँ तिहारी जोट॥

होलीके दिन कालिन्दीपर एक ओर श्रीकृष्ण अपने सखाओं, गोपबालकोंके साथ हैं और दूसरी ओर राधा अपनी सखियोंके साथ आयी हैं। होलीमें वे एक-दूसरेको परस्पर स्नेहसिक्त गाली देते हैं। हाथोंमें स्वर्ण पिचकारी लेकर एक-दूसरेपर केसरमिश्रित रंग डालते हैं। अबीर-गुलाल उड़ाते हैं। महाकवि सूरदासके अनुसार—

होरी खेलत यमुना के तट कुंजनि तट बनवारी।
दूत सखियन की मंडल जोरे श्री वृषभान दुलारी॥
होड़ा-होड़ी होत परस्पर देत हैं आनंद गारी।
भरे गुलाल कुम-कुम केसर कर कंचन पिचकारी॥

होली मनानेकी कई परम्पराएँ व्रजके आँगनमें विकसित हुईं। कहीं उसने कोमल, मध्यम तो कहीं उग्र रूप लिया। वृन्दावनमें गुलाबोंके फूलोंकी पंखुड़ियोंसे रंगमंचपर राधा-कृष्ण होली खेलने लगे तो नन्दगाँव-बरसानामें महिलाएँ लठ चलाने लगीं। इसपर हास्यकवि काका हाथरसीने लिखा—

बरसानेकी होली देखो, हुरियारोंकी टोली देखो।
टेसू के बसंती रंग में, भींगे लहंगा चोली देखो॥
त्रिया चलाती लाठी देखो, पिटते पूत त्रिपाठी देखो।
व्रज अंचल की प्रथा पुरानी, होली की परिपाटी देखो॥

कहते हैं होलीका त्यौहार भगवान् श्रीकृष्णने आरम्भ किया। उनसे पूर्व यह त्योहार होलिका-दहनतक ही सीमित था। भगवान् श्रीकृष्णने इसी दिन पूतना नामकी राक्षसीका संहार किया था। इससे समूचे व्रजमण्डलमें खुशीकी लहर दौड़ गयी थी। गाँवके लोगों और गोप-गोपिकाओंने रंग खेलकर और रासलीला मनाकर खुशीकी अभिव्यक्ति की थी। इसपर भक्तिमती मीराबाईने लिखा—

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारी।
चंदन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी॥
भरि भरि मूठ गुलाल लाल चहुँ देत सबन पैर डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी॥

होलीके इस मादक पर्वपर श्रीराधारानी श्रीकृष्ण-प्रेमको मनमें धारणकर केसरयुक्त रंग अपनी पिचकारियोंमें भरकर मोहनका नख-शिख भिगो रही हैं। महाकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके अनुसार—

चहुँ ओर कहत सब होरी हो हो होरी
पिचकारी छूटत उड़त रंग की झोरी
मधि ठाढ़े सुंदर स्याम साथ लै गोरी
बाढ़ी छवि देखत रंग-रंगीली जोरी
गुन गाय होत 'हरिचंद' दास बलिहारी
वृन्दावन खेलत फाग बढ़ी छबि भारी।

गाजे-बाजेके साथ नाचते-गाते सखा और सखियाँ श्रीमोहनके संग आनन्दकी रसधारासे सिंचित हो रहे हैं। होलीके इस महान् पर्वका विस्तारसे वर्णन करते हुए भक्त कवि भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने लिखा है—

खेलत स्यामा-स्याम ललित ब्रज में रस होरी॥
राधा-संग सखी-सहचरि सब मिलि केसर-रँग-घोरी।
सुन्दर स्याम-बदन पर डारत भरि-भरि कनक-कटोरी॥
प्रेम-रस-रंग-बिभोरी॥
हेरि-हेरि हरि-मुख पिचकारी छाँड़ि रही चहुँ ओरी।
पकरि हाथ सखियन मलि दीन्हीं मुँह गुलाल अरु रोरी॥

सन्ध्याका समय हो गया। बरसानेकी गोपियाँ एकत्र होकर दिनके समय कान्हासे किस प्रकार होली खेलीं, इसकी चर्चा करने लगीं। महाकवि रसखानके शब्दोंमें बिसाखा सखी बोली—

फागुन लाग्यो सखी जब तें तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचै नहिं एक बिसेख यहै सबै प्रेम अच्यो है॥
साँझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भईं अब कौन भटू जिहिं मान बच्यो है॥

कहा जाता है, श्रीकृष्णके बड़े भ्राता बलरामने राधासे कहा, 'भाभी! हम भी होली खेलेंगे।' बलराम जेठ थे। अतः उनके व्यवहारसे राधा कुछ विचलित हुईं और कृष्णसे शिकायत की तो वे मुसकराकर बोले—त्रेतायुगमें वे लक्ष्मण थे, उसी नाते उन्होंने भाभी कह दिया होगा। तबसे व्रजभूमिके एक स्थान 'जावक' में बलराम और राधा अर्थात् जेठ और भाभीकी होली होती है। ऐसे सम्बन्धवाले भी होली खेलते हैं, पर एक मर्यादाके साथ। मथुरासे चालीस किलोमीटरकी दूरीपर 'जावक' एक प्राचीन स्थल है, कहा जाता है कि यहाँ श्रीकृष्णने राधाको रिझानेके लिये उनके पैरोंपर महावर (जावक) रचाया था। बृहद् गौतमीयपुराणानुसार राधाके चरणोंसे जावक गिरनेके कारण यह स्थान जावक कहलाया।

'शारदे! चरणकमल रज दे!'

(श्रीओझेलालजी शिववेदी, एम०ए०, साहित्यरत्न)

शारदे! चरणकमल रज दे!
कर में पुस्तक वीणा धारे!
माता तुझ पर तन मन वारे!
विद्या बुद्धि प्रदे॥ १॥
नहिं अदेय तुझको कछु माता!
विद्यावारिधि बुद्धि प्रदाता॥
ले प्रणाम गुण दे!
शारदे! चरणकमल रज दे!॥ २॥
दीन छात्र हम तुम्हें पुकारें!
प्यार करो! विद्या दो सारे!
शरणागत चित दे!
शारदे! चरणकमल रज दे!॥ ३॥

संत-स्मरण

(परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

❀ बाराबंकी क्षेत्रके एक प्रभावशाली जमींदार थे, धर्मनिष्ठ और सन्त-सेवी। उनके यहाँ सन्तोंका आवागमन बना रहता था। एक बार एक नये साधु पहुँचे और उनके सेवा-सत्कारसे प्रभावित होकर वहीं टिक लिये। जमींदारने भी कोई विरोध नहीं किया। कुछ समय पश्चात् उस साधुकी स्वाभाविक मृत्यु हो गयी। उस जमींदारकी गायने एक बछड़ेको जन्म दिया, जो खूब हृष्ट-पुष्ट था। वह तेजीसे बड़ा हुआ, किंतु किसी काममें न लगे, गिर जाय। मारनेका भी उसपर कोई असर न हो। लोगोंने सलाह दी कि इस बैलको कम भोजन दिया जाय, जिससे यह कुछ दुबला होनेपर काम करेगा। वैसा ही किया गया। इस बीच दो महात्मा वहाँ पधारे और उस बैलको देखकर उसके पूर्वजन्मकी सारी बात उनकी समझमें आ गयी। उन्होंने जमींदारसे कहा कि हम इसे ठीक करेंगे और उस बैलके कानमें कहा कि तुमने यहाँ जो खाया था, उसे चुकाये बिना छूट नहीं पाओगे। जल्दी-जल्दी काम करके इस शरीरसे मुक्ति पाओ, नहीं तो बार-बार यहाँ आना पड़ेगा। बैल तत्काल दौड़-दौड़कर काम करने लगा। पुराने संत कहते थे कि छः हजार भगवन्नाम-जपतक तो विभिन्न ऋण-शुद्धि ही होती रहती है। उससे ज्यादा जप-भजन हो तो कुछ जमा-पूँजी बने। कहावत है—
दानमेंसे दान दे, तीन लोक जीत ले।

❀ राजस्थानमें रामसनेही सम्प्रदायके एक सन्त थे, जिनकी साधना थी—वैखरी वाणीसे ऊँचे स्वरमें राम-रामका उच्चारण करते रहना। नींदके कारण भजन छूट न जाय—इस भयसे वे तालाबके किनारे पेड़की डालपर बैठकर राम-राम करते, जिससे तालाबमें तत्काल गिरनेका भय बना रहे और नींद न आने पाये। ठाकुरजीने परीक्षा लेनेके लिये उन्हें बढ़िया घीसे सराबोर चूरमा दिखाकर खानेको बुलाया। वे बोले—अब तो रामनामका चूरमा ही खाना है। छः महीनेतक बिना सोये भजन करते रहे, तब निद्रादेवीने प्रकट होकर कहा कि अब कभी तुम्हारे पास नहीं आऊँगी। उनका भजन निर्विघ्न चलता रहा। भोगका आकर्षण नहीं रहे, तभी भजन बनेगा। शरीर प्रारब्धका भोग करता रहेगा, भजन निर्विघ्न होता रहेगा।

❀ सद्गुरु अनेक प्रकारसे शिष्यको उद्धारका मार्ग बताते हैं और आवश्यकतानुसार ब्याजसे उन्हें सन्मार्गपर दृढ़ करते हैं। नासिक कुम्भकी एक घटनाका स्मरण करते हुए महाराजजीने बताया कि पहाड़ीबाबाके साथ वहाँ गये थे। बाबा तो एक अँचला-लँगोटीमें रहते थे। एक दिन एक झोली देते हुए कहा कि मैं नासिक जा रहा हूँ, इसमें भण्डारेके लिये १३००० रुपये हैं। सँभालकर रखना। उस थैलीकी चिन्तामें भोजन, निद्रा यहाँतक कि नित्यकर्म भी बाधित हो गया। वापस आनेपर बाबाने दिखावटी डाँट पिलायी कि अभीतक नित्यकर्मसे भी निवृत्त नहीं हुए। फिर बताया कि थैली इसीलिये तुम्हारे पास छोड़ी थी कि तुम्हें अनुभव हो जाय कि धन-सम्पत्ति भजनकी सबसे बड़ी बाधक है। ब्याजसे शिक्षा देना सद्गुरुओंका विशेष लक्षण होता है।

❀ श्रद्धापूर्वक गुरुके आदेशका पालन करनेसे जीवनका परम लक्ष्य स्वरूपस्थिति भी प्राप्त हो जाती है। वृन्दावनमें गिरिराजजीस्थित लक्ष्मणमन्दिरकी व्यवस्था एक बार अत्यन्त शोचनीय हो गयी। लोगोंने मनमाना कब्जा कर लिया। महन्तजी श्रीरामचरणदासजी महाराज हनुमानगढ़ी अयोध्यामें विराजते थे। उन्हें चिन्तित देख भक्तमालीजी जो उनके शिष्य थे, उन्होंने चिन्ताका कारण पूछा। महाराजजीने बताया कि वहाँकी व्यवस्था किसे सँभलावें—यही चिन्ता है। भक्तमालीजी तुरंत कह उठे कि मेरे ज्येष्ठ गुरुभाईको वहाँ महन्त बना दें और मैं उनका मुख्तार बनकर सारी व्यवस्था देखूँगा। आप किसी बातकी चिन्ता नहीं करें। ऐसा ही किया गया। महाराजजीने वहाँ जाकर चालीससे अधिक मुकदमे लड़े, किंतु विपक्षियोंसे भी कोई द्वेषका भाव नहीं रखा। अन्तमें सब मुकदमोंमें जीत होकर मन्दिरकी सम्पत्ति खाली होनेकी स्थिति बनी तो दयापूर्वक सभी पूर्ववर्ती लोगोंको ही किराये इत्यादिपर रखकर व्यवस्था स्थापित कर दी। मन्दिरका भव्य निर्माण कराया, किंतु अपना नाम कहीं नहीं आने दिया। यह प्रपंचके बीच निर्विकार रहने और गुरुकी आज्ञाका पालन करनेसे आध्यात्मिक परमोपलब्धिका अनुपम उदाहरण है। **'प्रेम'**

प्रेरक-कथा—

दृढ़ संकल्प

(श्रीराजेशजी माहेश्वरी)

ठण्डसे ठिठुरती हुई, घने कोहरेसे आच्छादित रात्रिके अन्तिम प्रहरमें मोटरसाइकिलपर सवार एक नवयुवक अपने घर वापस जा रहा था। उसे चौराहेपर कचरेके ढेरमेंसे किसी नवजात शिशुके रुदनकी आवाज सुनायी दी, जिसे सुनकर वह स्तब्ध होकर रुक गया और उस ओर देखने लगा। वह यह देखकर अत्यन्त भावुक हो गया कि एक नवजात कन्याको किसीने कचरेके ढेरमें फेंक दिया है। अब उस नवयुवकके भीतर द्वन्द्व पैदा हो गया कि इसे उठाकर किसी सुरक्षित जगह पहुँचाया जाय या फिर इसे इसके भाग्यके भरोसे छोड़ दिया जाय। इस अन्तर्द्वन्द्वमें उसकी मानवता जाग्रत् हो उठी और उसने उस बच्चीको उठाकर अपने सीनेसे लगा लिया और उसे तुरंत नजदीकके अस्पताल ले गया। वहाँपर उपस्थित चिकित्सकसे वह बोला कि आप इस नवजात शिशुकी जीवन-रक्षाहेतु प्रयास करें, यह मुझे नजदीक ही कचरेके ढेरमें मिली है। इसकी चिकित्साका सम्पूर्ण खर्च मैं वहन करनेके लिये तैयार हूँ। यह सुनकर डॉक्टरने उस नवजातको गहन चिकित्सा-कक्षमें रखकर इसकी सूचना नजदीकी पुलिस थानेमें दे दी।

कुछ समय पश्चात् पुलिसके दो हवलदार आकर उस नवयुवक जिसका नाम राकेश था, उससे कागजी खानापूर्ति कराकर अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए चले गये। दूसरे दिन सुबह राकेश अपने घर पहुँचा और अपने माता-पिताको रातकी घटनाकी सम्पूर्ण जानकारी दी, जिसे सुनकर उसके माता-पिता भी स्तब्ध हो गये और कहा—'आज न जाने मानवता कहाँ खो गयी है!' राकेशकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि तुमने बहुत नेक काम किया है। वह नवजात जीवन-मृत्युके बीचमें संघर्ष करते हुए अन्ततः प्रभुकृपासे बच गयी। बच्चीको देखनेके लिये राकेशके माता-पिता भी अस्पताल गये। उस लड़कीका मासूम चेहरा देखकर वे भावविह्वल हो उठे और उन्होंने आपसमें निर्णय किया कि अपने परिवारके सदस्यकी तरह ही उसका पालन-पोषण करेंगे। इस सम्बन्धमें सभी कानूनी कार्यवाही राकेशने पूरी कर ली। बच्चीका नाम किरण रखा गया। कुछ वर्ष पश्चात् राकेशके माता-पिता उसके ऊपर शादी करनेके लिये दबाव डालने लगे। यह सब देखकर राकेशने एक दिन स्पष्ट तौरपर उन्हें बता दिया कि वह शादी नहीं करना चाहता और सारा जीवन इस बच्चीके पालन-पोषण और इसके उज्ज्वल भविष्यके लिये समर्पित करना चाहता है। राकेशकी इस जिदके आगे उसके माता-पिता हार मान गये।

किरण धीरे-धीरे बड़ी होने लगी और अत्यन्त प्रतिभावान् एवं मेधावी छात्रा साबित हुई। १२वीं कक्षा प्रथम श्रेणीसे उत्तीर्ण करनेके पश्चात् वह उच्च शिक्षाके साथ-साथ राकेशके पैतृक व्यवसाय दुग्ध डेरीका कार्य भी सँभालने लगी। उसने अपनी कड़ी मेहनत और सूझबूझसे अपने व्यवसायको बढ़ाकर उसे शहरके सबसे बड़े डेयरी फार्मके रूपमें विकसित कर दिया।

समय धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था, राकेशके मनमें किरणके विवाहकी चिन्ता सताने लगी। एक दिन उसने अपने इन विचारोंको किरणसे सामने रखा तो किरणने आदरपूर्वक उसे बताया कि अभी उसने विवाहके विषयमें कोई चिन्तन नहीं किया है, अभी फिलहाल उसका सारा ध्यान आप सबकी सेवा और अपनी पढ़ाई एवं व्यवसायकी उन्नतिके प्रति है। इसके बाद भी राकेशने कई बार इस बारेमें बात करनेका प्रयास किया, पर हर बार किरण उसे वही जवाब दे देती थी।

समय ऐसे ही बीतता गया और एक दिन अचानक ही हृदयाघातसे राकेशकी मृत्यु हो गयी। किरणके लिये यह वज्रपात-सरीखी बात थी। किसी तरह उसने अपनेको सँभाला। कई महीने बीत गये। राकेशकी एकमात्र वारिस होनेके कारण एक दिन

बैंकसे उसे लाकरोंके बारेमें सूचना आयी। वह राकेशके लॉकरोंको बन्द करनेके लिये बैंक गयी। उन लॉकरोंमें उसे कुछ फाइलोंके सिवा कुछ नहीं मिला। वह सारी औपचारिकताएँ पूरी करके उन फाइलोंको घर ले आयी। उसी दिन रात्रिमें उसने उन फाइलोंको देखा और पढ़नेके बाद स्तब्ध रह गयी कि वह राकेशकी सगी बेटी नहीं है, बल्कि कचरेके ढेरमें मिली एक लावारिस बच्ची है, जिसे राकेशने अपनी बेटीके समान पाल-पोसकर बड़ा किया और वह सुखी रहे, इसलिये उसने शादी भी नहीं की। राकेशके त्याग, समर्पण और स्नेहकी यादकर किरण रोने लगी। उसके मनमें अपने जीवनकी एक-एक घटनाकी स्मृति आती रही और सारी रात वह उस महामानवकी स्मृतियोंमें खोयी रही।

उन स्मृतियोंको चिरकालतक स्थायी रखनेके लिये उसने शहरमें एक सर्वसुविधासम्पन्न अनाथ-आश्रम बनवाया, जिसमें अनाथ बच्चोंके लालन-पालन, शिक्षा एवं चिकित्साकी समस्त सुविधाएँ उपलब्ध थीं और इसका निर्माण किरण ने अपने पितातुल्य स्वर्गीय राकेशकी स्मृतिमें कराया। ऐसे बच्चोंकी सेवाको ही उसने अपना ध्येय बना लिया, जो उसकी तरह परित्यक्त कर दिये गये थे और जिन्हें किसी राकेशकी आवश्यकता थी।

श्रीवृन्दावन-महिमा

वृन्दाटवी सहजवीतसमस्तदोषा दोषाकरानपि गुणाकरतां नयन्ती।
पोषाय मे सकलधर्मबहिष्कृतस्य शोषाय दुस्तरमहाघचयस्य भूयात्॥
वृन्दाटवी बहुभवीयसुपुण्यपुञ्जान्नेत्रातिथीभवति यस्य महामहिम्नः।
तस्येश्वरः सकलकर्म मृषा करोति ब्रह्मादयस्तमतिभक्तियुता नमन्ति॥
वृन्दावने सकलपावनपावनेऽस्मिन् सर्वोत्तमोत्तमचरस्थिरसत्त्वजातौ।
श्रीराधिकारमणभक्तिरसैककोशे तोषेन नित्यपरमेन कदा वसामि॥
वृन्दावने स्थिरचराखिलसत्त्ववृन्दानन्दाम्बुधिस्नपनदिव्यमहाप्रभावे।
भावेन केनचिदिहामृति ये वसन्ति ते सन्ति सर्वपरवैष्णवलोकमूर्ध्नि॥

श्रीवृन्दावनधाम स्वाभाविक ही समस्त दोषोंसे मुक्त है; यही नहीं, वह दोष-कोषोंको भी गुणागार बना देनेकी सामर्थ्य रखता है। यद्यपि सब प्रकारके धर्मोंने मेरा बहिष्कार कर दिया है—मुझसे नाता तोड़ लिया है, फिर भी मैं आशा करता हूँ कि मेरा वह सब प्रकारसे पोषण करेगा और मेरे दुस्तर महापातक-समुद्रको शीघ्र ही सुखा डालेगा। अनेक जन्मोंकी महान् पुण्य-राशि जब फलीभूत होती है, तभी श्रीवृन्दावनधामके दर्शन होते हैं। किंतु जिस महाभाग्यवान् पुरुषको श्रीवृन्दावनधामके दर्शन हो जाते हैं, कर्मफल-दाता ईश्वर उसके सारे संचित कर्मोंको विफल कर देते हैं और ब्रह्मादिक भी अत्यन्त भक्तियुक्त होकर उसे नमन करते हैं। संसारमें जितनी भी पवित्र करनेवाली वस्तुएँ हैं, श्रीवृन्दावनधाम उन सबको भी पवित्र करनेवाला है। चराचर जितने भी जीव श्रीवृन्दावनधाममें रहते हैं, वे संसारके समस्त जीवोंमें श्रेष्ठतम हैं। श्रीराधिका-रमण श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके भक्ति-रसका तो यह भण्डार ही है। अहा! वह समय कब होगा, जब परम सन्तोषपूर्वक मैं नित्य इस वृन्दावन-भूमिमें निवास करूँगा? इस वृन्दावनधामका ऐसा अलौकिक प्रभाव है कि इसमें निवास करनेवाले चराचर समस्त जीव-समूह आनन्द-समुद्रमें गोता लगाने लगते हैं। जो कोई भी किसी भी भावसे मृत्युपर्यन्त यहाँ रह जाते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ वैष्णवधामके मुकुट-मणि बन जाते हैं। **[श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीप्रणीत 'श्रीवृन्दावनमहिमामृत'से]**

'जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे'

(डॉ० श्रीमृत्युंजयजी उपाध्याय)

मंगलमय विभुकी सृष्टिमें सब मंगलमय है। पूर्णसे कहीं अपूर्णकी सृष्टि होती है या पूर्णके योगसे कोई अपूर्ण रह सकता है? चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ जीव मानवतन पाता है। यह ईश्वरका अंश है—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी।'*** और देर-सबेर सीधे या प्रकारान्तरसे इसे उसीकी सत्तामें मिल जाना है। नदियोंका चरम उद्देश्य है—समुद्र-संगम या किसी बड़ी नदीमें मिल जाना। जीवका ध्येय है—परमात्मामें एकाकार होना। फिर न वह आवागमनके बन्धनमें पड़ता है और न जरा-मरणके चक्रमें ही पड़ता है। जिस प्रकार नदी समुद्रमें मिलकर उफन नहीं पाती, उसमें प्रवाह नहीं आता, वह समुद्रका धर्म गम्भीरता, धीरता पा लेती है, वैसी ही अवस्था जीवकी है—***'जैसे सरिता मिलै सिंधुसे पुनि प्रवाह न आवै हो'*** (सूरदास)। जीव जिस विराट्से आया था, उसीमें मिल गया, एकमेक हो गया—हिमजलके समान। बर्फ या पानीमें—प्रकारभेद है; मौलिक अन्तर कहाँ है? पानी ही मूल है और बर्फको भी पानी ही बनना है—

पानी ही ते हिम भया हिम ही गया बिलाय।
कबिरा जो था सो भया अब कुछ कहा न जाय॥

(कबीर-वचनावली)

जलके अथाह सागरसे एक बूँद जल लें और पुनः उसीमें डाल दें तो उसे खोज पाना उतना ही कठिन होगा, जितना जीवका परमात्मामें एकाकार होनेपर खोजना। कबीरने ठीक ही लिखा है—

हेरत हेरत हे सखी रह्यो कबीर हेराय।
बूँद समाना समुद में सो कत हेर्‍या जाय॥

(कबीर-वचनावली)

यह तो हुई आत्मा-परमात्मा, जीव-ब्रह्मके ऐक्यकी कहानी, जीवके मोक्षका आख्यान, पर इस ओर प्रवृत्त कैसे हुआ जाय, अपनी अधोमुखी वृत्तियोंको ऊर्ध्वमुखी कैसे बनाया जाय, आत्म-साधनाकी अलख कैसे जगायी जाय, आत्म-साक्षात्कारकी ज्योति किस प्रकार जलायी जाय? ये प्रश्न बड़े विकट हैं और बुद्धिको विकल कर देते हैं।' परंतु ***'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ'*** के लिये सारे पथ प्रशस्त हैं। अपेक्षा है धैर्यकी, सहिष्णुताकी और शनैः-शनैः अपने अहंको गलानेकी। अहं ही हमारी सबसे बड़ी बाधा है। वही सारे अनर्थोंकी जड़ है। हमारा अज्ञान हमारे अहंको सींच-सींचकर बड़ा बनाता चलता है। हम सोचते हैं कि हम ही सब कुछ कर रहे हैं—हम अपूर्व बल-वैभवशाली हैं। यह सोचना उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार टिटहरी कहती है कि वही आकाशको थामे हुए है, जबकि आकाशको थामनेकी जरूरत नहीं है। वह तो शून्य है। जीवके सारे कार्य-व्यापार बिना प्रभु-संवलित हुए शून्य ही हैं, जिनका न कोई कर्ता कहला सकता है और न भोक्ता। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने कहा था—**'मामेकं शरणं व्रज'**—तुम मेरी शरणमें आ जाओ। तुम्हारे सारे पाप-ताप धुल जायँगे। प्रभु ईसामसीहने कहा था—'तुम मेरे पास आओ! मैं तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा।' पर प्रभुकी शरणमें जानेका सवाल उतना सरल नहीं है। ***'जो घर जारे आपनो चलै हमारे साथ।' 'पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान।'*** वाली बात है। सब-कुछको दाँवपर चढ़ाकर (सर्वोपरि अपने अहंको मिटाकर) ही प्रभुकी कृपाका अधिकारी बना जा सकता है। तभी शरणागतवत्सलकी अनुकम्पा पायी जा सकती है। भगवान् कृष्णने गीतामें अनासक्त योगका उपदेश देते हुए कह दिया है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

'इसलिये तू निरन्तर आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्य-कर्मको भलीभाँति करता रह; क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको पा लेता है। आसक्तिसे रहित अर्थात् कर्मफलके लगावसे अलग होकर स्थितप्रज्ञता और अनासक्तिकी चरमावस्था तब आती है, जब जीव जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-

दुःखको समान समझने लगता है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २। ३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर इसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको प्राप्त नहीं होगा, पापका भागी नहीं होगा।'

अनासक्त हुए बिना उसे मोक्ष नहीं मिल सकता। कारण प्रत्येक कर्मका संस्कार बनता है; अच्छा कर्म अच्छा संस्कार, बुरा कर्म बुरा संस्कार। दोनोंको सँभालनेके लिये मनुष्यको आवागमनके बन्धनमें बँधना पड़ता है। मनुष्यकी इच्छाएँ तो अनन्त हैं, अदम्य हैं, एक भी इच्छा अतृप्त रही कि उसे पूरा करनेके लिये उसे जन्म लेना पड़ता है। भगवान् बुद्धने निर्वाणका अर्थ समझाया—'दीयेका बुझ जाना' अर्थात् इच्छाओंका सदाके लिये मिट जाना—इच्छारहितता। ये ही अवस्था मोक्षकी है, परंतु संसारमें रहकर सारे कर्म करते हुए हम विदेह कैसे रहें, काजलकी कोठरीसे बेदाग कैसे निकलें, समुद्रकी लहरोंपर चलकर भी हम उनके थपेड़ोंसे कैसे बचें, उनसे हमारी ग्रीवा सदा सवा हाथ ऊँची कैसे रहे? आराधना, उपासनाद्वारा अहंको इतना गला दिया जाय कि ***'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर'*** की स्थिति उत्पन्न हो जाय। हमारे सारे क्रिया-व्यापार उन्हींपर आश्रित हों, उन्हींके संकेतोंपर चलें। '**निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्**'—हम तो कर्ताभर हैं; निमित्त हैं; नियामक तो प्रभु हैं। विजय उसीकी है, हार भी उसकी ही है। श्रेय भी उसका, प्रेय भी उसका—'लाभ-हानिसे आसक्ति नहीं, विकार नहीं। इस अनासक्त योगकी अग्निमें हमारे सारे संस्कार पतिंगेके समान जलकर क्षार हो जायँगे और उसे भोगनेके लिये ***'फिर-फिर जठर जरे'*** (सूरदास)-की स्थिति नहीं आ सकती है।

जन-साधारणके लिये (जो जंगलोंमें धूनी नहीं रमा सकते, वानप्रस्थ नहीं ले सकते, संसारी मायामें रहते हुए प्रभुके दर्शन या कृपाके प्रत्याशी हैं) भक्ति ही एकमात्र अवलम्ब है। धर्मका प्रवाह तीन धाराओंमें बहता है—कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्मके बिना वह लूला-लँगड़ा विकलांग हो जाता है, ज्ञानके बिना अन्धा और भक्तिके बिना हृदयहीन क्या निष्प्राण रह जाता है? इसीलिये भारतीय आध्यात्म-साधनामें कर्म, ज्ञान और भक्तिकी त्रिपथगा बहायी गयी है। इनमें भक्ति ही वह साधन-तत्त्व है, जिसके प्रवाहमें आकर कर्म और ज्ञानका मार्ग स्वतः प्रशस्त हो जाता है। भक्तका हृदय कलुष-विकारसे रहित होकर निर्मल और शुद्ध हो जाता है। वहाँ प्रभुका वास रहता है। किसीने कहा है—

जब भक्ति उड़ाती मानस को ऊँचे की ओर।

तब भगवान् स्वयं खिंच जाते हैं बँधे प्रेम की डोर॥

कर्म करते-करते जीवनभर साधक व्यक्ति थक जाय, सारे शास्त्रोंकी खाक छान डाले, पर भक्तिके बिना न उसमें कर्मके प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न हो सकता है और न ज्ञानका प्रकाश ही आ सकता है। भक्ति वह पारसमणि है, जिसके स्पर्शमात्रसे कुधातु भी सोना बन जाती है।

एक लोहा पूजामें राखत इक घर बधिक परो।

पारस परस भेद नहिं मानत कंचन करत खरो॥

इसी भक्तिके बलपर सरल, निरीह और अज्ञानी व्रजकी गोपियोंने उद्धवके शुष्क ब्रह्मवाद, ज्ञानवाद और प्रकाण्ड पाण्डित्यकी धूल उड़ा दी। ज्ञान-गरिमाके मनीषी उद्धवको व्रजकी धूलमें लोटना पड़ा। गोपियोंकी ***'उरमें माखन चोर गड़ै', 'निर्गुन कौन देस को बासी' 'निसिदिन बरसत नैन हमारे'***—ऐसी आन्तरिक अभिव्यक्तियोंने न केवल उद्धवको सच्चा भक्त बना दिया, वरन् यह सिद्ध कर दिया कि भक्तिके लिये शुद्ध हृदय ही चाहिये, ज्ञानका बोझ नहीं। प्रभुके प्रति वैसी आस्था और कृपाका भाव भी तभी जगता है, जब भक्तकी विह्वल आत्मा पुकार-पुकार उठती है—***'जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।'***

श्रीजानकीजीवनाष्टकम्

*[‘श्रीजानकीजीवनाष्टकम्’ अज्ञातकर्तृक एक अत्यन्त भावपूर्ण प्राचीन स्तोत्र है। वस्तुतः अध्यात्मरामायणकी विषयवस्तुपर आधारित इस स्तोत्रके प्रारम्भिक सात श्लोक क्रमशः उसके सात काण्डोंका साररूप हैं तथा अन्तिम श्लोक उपसंहाररूप है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे अध्यात्मरामायणकी सम्पूर्ण विषयवस्तुका साररूप पुण्यस्मरण मानसपटलपर सहज अंकित हो जाता है—**सम्पादक**]*

आलोक्य यस्यातिललामलीलां सद्भाग्यभाजौ पितरौ कृतार्थौ। तमर्भकं दर्पकदर्पचौरं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ १॥

श्रुत्वैव यो भूपतिमात्तवाचं वनं गतस्तेन न नोदितोऽपि। तं लीलयाह्लादविषादशून्यं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ २॥

जटायुषो दीनदशां विलोक्य प्रियावियोगप्रभवं च शोकम्। यो वै विसस्मार तमार्द्रचित्तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ ३॥

यो वालिना ध्वस्तबलं सुकण्ठं न्ययोजयद्राजपदे कपीनाम्। तं स्वीयसन्तापसुतप्तचित्तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ ४॥

यद्ध्याननिर्धूतवियोगवह्निर्विदेहबाला विबुधारिवन्याम्। प्राणान्दधे प्राणमयं प्रभुं तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ ५॥

यस्यातिवीर्याम्बुधिवीचिराजौ वंश्यैरहो वैश्रवणो विलीनः। तं वैरिविध्वंसनशीललीलं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ ६॥

यद्रूपराकेशमयूखमालानुरञ्जिता राजरमापि रेजे। तं राघवेन्द्रं विबुधेन्द्रवन्द्यं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ ७॥

एवं कृता येन विचित्रलीला मायामनुष्येण नृपच्छलेन। तं वै मरालं मुनिमानसानां श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि॥ ८॥

जिनकी अतिशय ललित लीलाओंका अवलोकनकर सौभाग्यभाजन माता-पिता—महाराज दशरथ एवं देवी कौसल्या कृतार्थ हो गये, जो कन्दर्पके दर्पका हरण करनेवाले हैं तथा शिशुरूपमें शोभायमान हो रहे हैं, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥ [महाराज दशरथके] द्वारा वनवासहेतु स्पष्टरूपसे न कहे जानेपर भी केवल इतना सुनकर कि ‘महाराज वचनबद्ध हैं’ जो [पिताके वचनगौरवके रक्षणार्थ] वन चले गये, जो स्वभावतः आह्लाद और विषादसे परे हैं; तथापि लीलाके अनुरूप आह्लादित अथवा दुखित होनेका नाट्य करते हैं, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २॥ जटायुकी दीन दशाको देखकर जिनको अपनी प्रियतमा सीताका विरहजनित शोक ही विस्मृत हो गया, उन करुणाविगलित हृदयवाले जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३॥ जिन्होंने बालिके द्वारा विनष्ट की गयी सामर्थ्यवाले सुग्रीवको वानरोंका अधिपति बना दिया। जिनका चित्त अपने आत्मीयजनोंके [अल्पतम] सन्तापसे [भी अत्यधिक] सन्तप्त हो उठता है, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ४॥ देवशत्रु रावणकी वाटिकामें वियोगरूपी अग्निमें जल रही विदेहनन्दिनी जिनके ध्यानरूपी जलसे धुलकर शीतल हो गयीं और उन्होंने प्राण धारण कर लिये। उन प्राणस्वरूप, जानकीजीवन प्रभु श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ५॥ अहो! जिनके अलौकिक पराक्रमरूप सागरकी लहरोंमें अपने बन्धु-बान्धवोंसहित विश्रवापुत्र रावण विलीन हो गया, जिन्होंने लीलावश शत्रुओंका संहार करनेवाला स्वभाव धारण कर रखा है, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ६॥ जिनके सौन्दर्यरूप चन्द्रमाकी किरणमालासे अनुरंजित [अयोध्याकी] राजलक्ष्मी अत्यधिक शोभासे सम्पन्न हुई, जो देवताओंसहित देवराज इन्द्रके भी वन्दनीय हैं, उन रघुकुलशिरोमणि जानकीजीवन प्रभु श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ७॥ अपनी मायासे मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होकर राजाके रूपमें जिन्होंने [सेतुबन्ध, रावणवध आदि] इस प्रकारकी चित्र-विचित्र लीलाओंको सम्पन्न किया, मुनिजनोंके मनरूपी मानसरोवरमें राजहंसकी भाँति स्वच्छन्द विहार करनेवाले उन जानकीजीवन प्रभु श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ८॥ **[प्रेषक—श्रीचन्द्रकान्तजी पुराणिक]**

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ भक्तिकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा—जो साधक भक्त हैं, अभी सिद्ध नहीं हुए हैं, अपनी इन्द्रियोंको जीतकर अपने वशमें नहीं कर सके हैं, उन्हें संसारके विषय काम-क्रोध आदि बार-बार बाधा पहुँचाते हैं। विषय अपनी ओर खींचते हैं। वह साधक बार-बार अपने मनको विषयोंसे अलग करता है, क्षण-क्षण नाम-संकीर्तन आदिका अभ्यास करता है। भक्तिके प्रतापसे वह भक्त प्राय: विषयोंके वशमें नहीं होता है, विषयोंसे कभी हारता नहीं है। जैसे ईंधनके ढेरको अग्नि जला डालती है, उसी प्रकार भगवान्‌की भक्ति पापराशिको जला डालती है। भगवदाश्रय लेनेपर पापोंका होना सम्भव नहीं रहता है, फिर भी कदाचित् कोई दोष बन जाता है तो उसे भगवान् ही नष्ट कर देते हैं। भक्तिको त्यागकर अन्य यज्ञ, तप, दानादिसे उस प्रकारकी सुख, शान्ति, भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है, जैसी कि शुद्ध प्रेमसे होती है। दान, तप, यज्ञ आदिको करते समय भक्तिका ही मुख्य लक्ष्य रहना चाहिये।

❀ भक्तिमय आचरणसे जबतक शरीर पुलकित न हो, अश्रुपात न हो, कण्ठ गद्‌गद न हो, तबतक हृदयके शुद्ध होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। हृदयमें भगवत्प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छा रखनी चाहिये, धीरे-धीरे बलवती इच्छा वैष्णवधर्मका आचरण करा लेगी। उससे भगवान्‌की कृपा अति सुखद और सुलभ हो जायगी। अपने समीपवर्ती मित्रोंको प्रभुके नाम-कीर्तन-सत्संगकी ओर आकृष्ट करके उनके सहयोगसे अपनी भक्तिको बढ़ाना चाहिये। भक्तिका दान करनेसे भक्ति बढ़ती है।

❀ भगवान् एकमात्र भक्तिके सम्बन्धको मानते हैं। अपनी अपेक्षा अपने भक्तकी महिमा बढ़ाते हैं, अत: अपने चरणरजसे सरोवरके जलको शुद्ध न करके शबरीके पद-रजसे शुद्ध कराया। जाति, विद्या, महत्त्व, रूप, यौवन—ये भक्तिके पाँच काँटे प्रसिद्ध हैं। जाति, विद्या आदिका होना अच्छा है, पर अहंकार अच्छा नहीं है। जातिसे नीच, एक अक्षर पढ़ी नहीं थी, किसी भी दृष्टिसे उसका महत्त्व नहीं था। अति कुरूपा एवं वृद्धा थी, परंतु उसमें भक्ति थी और भगवान्‌ने भी नवधा-भक्तिका उपदेश उसे दिया। किसी ऋषिके सामने आपने नवधाका उपदेश नहीं दिया। सभी प्रकारके दोष नष्ट हो जाते हैं तब भक्ति होती है। यदि भक्ति नहीं है तो विद्या, तपस्या, ज्ञान आदिका कोई महत्त्व नहीं है।

❀ भगवान्‌के स्वरूप, पिता-माता, ब्राह्मण, सन्त, गुरुदेव, तुलसी, पीपल, मन्दिरस्थ देवोंको प्रणाम करना चाहिये। शरीरसे साष्टांग अथवा वाणीसे प्रणाम यह भी सम्भव न हो तो मन-ही-मनसे नमस्कार कर लेना चाहिये। इस प्रकार भक्तिसे युक्त जिसका जीवन है, वह मुक्तिदाता श्रीकृष्णके चरणोंको, प्रेमको पानेका अधिकारी है। उसे भक्ति अवश्य प्राप्त होती है। राजा बलिने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। अन्तमें भगवान्‌ने और देव-ऋषियोंने बड़ाई की। तब उन्होंने कहा कि हम तो प्रभु-चरणोंमें पूरा एक प्रणाम भी नहीं कर पाये। आप ऐसे करुणामय हैं कि कोई थोड़ा भी पूजन करे, थोड़ी-सी भक्ति करे तो आप उसे बहुत करके मानते हो।

❀ ज्ञान या भक्तिके द्वारा तीनों प्रकारके संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं। जीवन्मुक्त कर्मोंके फलसे लिप्त नहीं होता है, अत: वह मुक्त हो जाता है। भगवान् जब नेत्रोंके सामने आते हैं, तब श्रीकृष्ण अपने भक्तके नासिका आदिके सामने अपने सौन्दर्य, सुगन्ध, सुकुमारता, उदारता, करुणा आदि गुणोंको प्रकट कर देते हैं। भक्त जितना-जितना आस्वादन करता है, उतनी ही आस्वादनकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। उनके हृदयमें परमानन्दका सागर लहराने लगता है, वह स्वयं कृतार्थ हो जाता है और उसके दर्शन-स्पर्शसे अन्य जीव भी कृतार्थ हो जाते हैं।

['परमार्थ के पत्र-पुष्प'से साभार]

शरीरको कैसे निरोग रखा जाय?

(श्रीरामचन्द्रजी वैरागी)

शरीरको कैसे निरोग रखा जाय? इसका मूल मन्त्र क्या है? क्या नुस्खा है—इसको जाननेके लिये हर आदमी लालायित है, हर आदमी निरोग रहनेके लिये प्रयास कर रहा है। वह डॉक्टरके पास, वैद्यराजके पास, हकीमके पास, योगगुरुके पास, तान्त्रिकके पास, देव-स्थानपर, मन्दिर-मस्जिद-दरगाह एवं समाधि-स्थलपर जाता है, सब अपनी-अपनी पद्धतिके अनुसार स्वस्थ रहनेका उपाय बतानेका प्रयास करते हैं। आदमीकी सोच और विचारधारा भ्रमित हो जाती है, कि कौन-सा नुस्खा अपनाऊँ, जिससे मैं सदैव तन्दुरुस्त एवं निरोग रहूँ। वर्तमानमें हर आदमी चाहे वह गरीब हो या अमीर किसी-न-किसी व्याधिसे ग्रसित है। यही सोच आदमीको दिन-रात खाये जा रही है, कस्तूरीकी सुगन्ध स्वयं आदमीके हृदयमें विराजमान है, निरोगताके लिये स्वास्थ्यवर्धक टॉनिक संजीवनी बूटी, अमृतघट-जैसी अमूल्य निधि ईश्वरने प्रदान कर रखी है। आवश्यकता है अपने मनकी सोच-विचारधाराओंकी चाबीसे निरोगताके तालेको खोलनेकी, जिससे आप सदैव हर पल-हर घड़ी ईश्वरकी अनमोल कृति मानव-शरीरको निरोग एवं तन्दुरुस्त रख सकें। स्वस्थ जीवन जीनेके लिये यहाँ कतिपय अनुभूत सूत्र दिये जा रहे हैं—

❀ पहला सूत्र है, 'मेरा शरीर निरोग है', सदैव यह सकारात्मक विचार रखिये।

❀ दूसरा सूत्र सदैव प्रसन्न मुद्रामें रहिये।

❀ तीसरा सूत्र मानसिक तनावसे मुक्त रहिये।

❀ चौथा सूत्र चिन्ता मत करिये।

❀ पाँचवाँ सूत्र मनमें क्रोध न रखिये।

❀ छठा सूत्र शरीरको स्वच्छ रखिये।

❀ सातवाँ सूत्र पानी खूब पीयें। छानकर पीयें, हो सके तो रात्रिमें ताँबेके बर्तन या लोटेमें पानी भरकर रख लें, अगर तुलसीके ५ पत्ते हों तो डाल दें। अगर शुद्ध चाँदीका सिक्का हो तो उसे जलके लोटेमें डाल दें, सुबह उठते ही वह जल पी लें। तुलसी खा लें, चाँदीका सिक्का निकालकर फिर जल पीयें। यह क्रम प्रतिदिन रखें। इससे आपके शरीरको ओज-तेजकी प्राप्ति होगी।

❀ आठवाँ सूत्र सूर्योदयसे पहले उठें।

❀ नौवाँ सूत्र चायका सेवन कम मात्रामें करें। सुबह-शाम सिर्फ दो बार ही चाय पीयें।

❀ दसवाँ सूत्र मीठा, शक्कर, नमक, मिर्च, मसाला उचित मात्रामें ही इनका सेवन करें। अच्छा है कि इनसे परहेज ही किया जाय।

❀ ग्यारहवाँ सूत्र तेलके तले पदार्थ एवं घी शुद्ध एवं उचित मात्रामें सेवन करें।

❀ बारहवाँ सूत्र शाकाहारी सात्त्विक भोजन ग्रहण करें। मांसाहारी भोजनसे बचें; क्योंकि कोई भी जीव जिसका आप सेवन करते हैं, निरोग नहीं रहता है।

❀ तेरहवाँ सूत्र गायका दूध सेवन करें। गरम दूधमें आधा चम्मच हल्दी डालकर पीयें। गायका नहीं मिलनेपर भैंसका दूध भी पी सकते हैं। किशमिशमें श्रीजी (लक्ष्मी)-का निवास है । अगर आप सक्षम हैं तो दूधके साथ २१ किशमिश और एक जोड़ा (पिसी हुई) इलायची और मनमाफिक शक्कर डालकर रोज सुबह पीयें, इससे आप निरोग रहेंगे।

❀ चौदहवाँ सूत्र यह है कि ७-८ बादाम रात्रिमें पानीमें भिगो दें, सुबह एक-एक दाना खायें। शरीरका तापमान सही रहेगा।

❀ पन्द्रहवाँ सूत्र यह है कि सर्दीमें २ छुहारा और २ अंजीर दूधमें उबालकर लें। इससे काफी फायदा होगा। खसखस २५ ग्रा०, ५ बादाम रात्रिमें पानीमें गला दें। सुबह पीसकर लेनेसे कमजोरी नहीं आयेगी।

❀ सोलहवाँ सूत्र यह है कि शराब, तम्बाकू, चरस, स्मैक, गाँजा, भाँग—इन नशीले पदार्थोंका सेवन कतई न करें। आपका अपना यह पेट शरीररूपी मन्दिरका गर्भगृह है। इसे स्वच्छ रखिये, जिस समय जिस चीजकी आवश्यकता हो, वह दीजिये, शरीर सदैव निरोग रहेगा।

कहानी—

अधिदेवता

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

'हमने यहाँ आकर भूल की। हमें यहाँ नहीं रहना चाहिये।' उनके मुखपर किंचित् क्षोभके भाव थे। 'मैंने यहाँ बहुत बुरा स्वप्न देखा। स्वप्नमें भय लगा।'

उन्हें स्वप्नमें ही भय लगा हो, यह बात नहीं; वह भय जाग्रत्में भी इस प्रकार मनमें बैठ गया कि एकाकी कुछ क्षण भी उस भवनमें आगे वे नहीं रहीं। वे संन्यासिनी हैं, वर्षोंसे एकाकिनी रहती हैं बस्तीसे पर्याप्त दूर; किंतु अन्ततः महिला जो ठहरीं।

'क्या देखा तुमने जीजी!' उनके एक मामाके पुत्र संन्यासी हो गये हैं, वे भी साथ आये थे। अब स्मरण नहीं कि उन्होंने भी कोई स्वप्न देखा था या नहीं। स्वप्नका विवरण अनावश्यक है; एक काला, मोटा, काना पुरुष; उसकी चेष्टाने उन्हें डरा दिया था।

'स्वप्न तो मैंने भी देखा है।' मैं बता दूँ कि मुझे बहुत कम स्वप्न दीखते हैं; किंतु उस रात्रि उस सुनसान पड़ी रहनेवाली कोठीमें मैंने भी स्वप्न देखा था। कोई विशेष बात नहीं थी, जैसे कोई पहाड़ी वृद्धा स्त्री सिरके पास आ बैठी थी। 'डरनेकी तो कोई बात नहीं है। कल हमलोग यहाँ देरसे आये थे। अब आज यहाँ स्वभावतः आजका भागवत तथा गीताका पाठ होगा। आगे कोई दुःस्वप्न दीखे, इसकी कोई सम्भावना नहीं।' सचमुच हम आठ दिन उस भवनमें रहे; किंतु किसीको कोई स्वप्न-दुःस्वप्न फिर नहीं दीखा।

कुछ दिन पहले मैं नीलकण्ठ आया था, ऊपर भुवनेश्वरीको जाते समय यह कोठी देख गया था। नीलकण्ठ कुछ दिन रहनेका विचार था और रहनेके लिये ऐसा एकान्त, खुला भवन भला किसे पसन्द नहीं होगा। दो-चार दिन बाद जब हम कुछ दिन रहनेके लिये आये, तब इस कोठीमें आ गये।

ऋषिकेशसे लगभग सात-आठ मील दूर पर्वतोंसे घिरा यह नीलकण्ठ तीर्थ अपनी अनोखी सुषमा रखता है। यहाँका शान्त, पवित्र वातावरण—नीलकण्ठकी चर्चा फिर कभी। यह कोठी नीलकण्ठसे लगभग एक फर्लांग ऊपर है। नीलकण्ठ आते समय यही पहले दृष्टिपथमें आती है।

कभी बड़ा वैभव रहा होगा यहाँका। किसी रानीने अपने एकान्तवास तथा भगवद्भजनके लिये इसे बनवाया था। उस समयके उपवनकी मात्र कल्पना देनेवाले कुछ फलवृक्ष तथा मल्लिकाकी जंगली-सी बन गयी लताएँ अब बच रही हैं।

दो विशाल कोठियाँ हैं। उनमें मुख्य कोठी तो अब रहनेयोग्य नहीं। सूने भवनसे कुछ मिल जानेके लोभमें अपनी मानवतासे च्युत मनुष्योंद्वारा उसकी साँकलें-कुण्डे इस प्रकार तोड़ दिये गये थे कि अब उसका कोई द्वार बन्द करके आप बाहर जा सकें, ऐसी स्थिति नहीं। उसमें श्रावण मेलेके समय अवश्य यात्री रात्रि-निवास करते होंगे; क्योंकि एक बड़े कमरेमें जले बीड़ीके टुकड़ोंकी ढेरी पड़ी थी।

दूसरी कोठी उससे कुछ कम सज्जित है; किंतु अपेक्षाकृत स्वच्छ और सुरक्षित है। दूसरी कोठीमें स्नानघर भी है और उसके पाइपमें अब भी जल आता है। हम इस दूसरी कोठीमें ही ठहरे थे। वैसे अब ये कोठियाँ नेपालके अधिकारमें हैं। सर्वथा उपेक्षित होनेसे जीर्ण हो गयी हैं और उनके अंश गिर रहे हैं। नौकरोंके भवनोंमेंसे बहुत-से गिर चुके हैं; जो हैं भी, वे रहनेयोग्य नहीं।

दोनों कोठियोंके मध्य सम्भवतः पुराना रसोईघर है। उसमें एक पर्वतीय वृद्धा रहती है। वही कोठियोंकी चौकीदार है। उसने भैंस, गाय, भेंड़ें पाल ली हैं। कोठीके पासकी भूमिमें कुछ बो लेती है। भूले-भटके मेरे-जैसे यात्री आ टिके तो कुछ पारितोषक मिल जाता है, बस। अब कोठीके स्वामी या उत्तराधिकारी तो सम्भवतः यह भूल ही गये हैं कि उनकी यहाँ कोई कोठी भी है।

हम कोठीमें आनन्दपूर्वक रहे। अबाबीलोंके लिये पर्याप्त कमरे खाली पड़े थे। हमने उन्हें बाधा नहीं दी और वे भी रात्रिमें यदा-कदा देखने ही आती थीं हमारे कमरेमें कि उनके यहाँ ये तीन द्विपाद् पक्षहीन अतिथि कैसे आ गये हैं!

× × ×

'यहाँका अधिदेवता मर गया है।' मेरे वे बन्धु स्वर्गाश्रमसे पधारे थे। उनकी व्यवस्था न होती तो हम इस पर्वतीय स्थानमें इस प्रकार रह नहीं पाते। वे मुझसे मिलने ही आये थे। यह कठिन चढ़ाई पार करके और

भोजनोपरान्त मध्याह्न विश्राम करने हमारे समीप कोठीमें आ गये थे। 'यहाँ आप लोगोंको नहीं रहना चाहिये। आप नीचे धर्मशालामें ऊपरके कमरेमें निवास करें।'

उन्होंने पता नहीं क्या अनुभव किया। अवश्य उन्हें कुछ मानसिक उद्वेग अनुभव हुआ होगा। रात्रि-विश्राम उन्होंने वहाँ न करके नीचे किया और हमारे लिये भी नीचेकी धर्मशालामें एक कमरेका प्रबन्ध करके तब दूसरे दिन प्रातः लौट गये।

'अधिदेवता मर जाता तो यह भवन टिकता नहीं' मैं मन-ही-मन सोच रहा था—प्रत्येक पदार्थका अधिदेवता होता है, यह हिन्दू-शास्त्र बतलाते हैं। वह भवन हो या छोटा कलश अथवा कुर्सी—पदार्थ बनता है और उसका अधिदेवता उसमें आ बसता है, जैसे शरीर माताके गर्भमें आया तो जीव उसमें आ जाता है। अधिदेवता प्रसन्न रहे तो पदार्थका उपयोग करनेवालेको वह पदार्थ सुख, शान्ति, लक्ष्मी और सुयश देनेवाला होता है और अधिदेवता अप्रसन्न हो जाय तो पदार्थ दुःख, अशान्ति, रोग, दरिद्रता, अयशादिका हेतु बन जाता है।

घर बनाकर क्षेत्रपालका पूजन तथा प्रत्येक पदार्थका उसके उपयोगसे पूर्व पूजनका विधान—परिपाटी सनातनधर्ममें उसके अधिदेवताकी तुष्टिके लिये ही है।

'अधिदेवता मर जाता तो भवन टिका कैसे रहता?' अधिदेवता भी मरता तो है। ग्रामका अधिदेवता मरता है तो ग्राम, घरका मरे तो घर और नगरका मरे तो नगर नष्ट हो जाता है। वहाँ दूसरा ग्राम, घर या नगर बसानेके प्रयत्न निष्फल जाते हैं और ऐसे प्रयत्नोंमें बहुत हानि होती है धन तथा जीवनकी भी।

'जीव न रहे तो शरीर टिका कैसे रहेगा? वह सड़ जायगा।' किंतु एक विचार साथ ही आया—'मनुष्य बहुत दिनोंतक अकेला रहे तो जनसम्पर्कमें जाना नहीं चाहता। सूने भवनका अधिदेवता भी तो एकान्तप्रिय हो जाता होगा। उसे उद्वेग होता होगा लोगोंके आनेसे और तब वह उन्हें उद्विग्न करता होगा।'

'आज यहाँका अधिदेवता दुखी होगा।' हम जब उस कोठीको छोड़कर नीचे जाने लगे, तब उन संन्यासिनी महिलाने कहा—'हमारे रहनेसे यहाँ दीपक जलता था, पाठ-पूजा होती थी और कम-से-कम दो-तीन कमरोंमे स्वच्छता तो रहती थी।'

'अवश्य वह दुखी होगा।' मुझे भी यही लगा। हम कोठी जब छोड़ना चाहते थे, तब छोड़ नहीं सके थे। दो दिनका विलम्ब हुआ था और वह भी नाममात्रके कारणसे। लगता था कि अधिदेवताको हमारा वहाँसे जाना अच्छा नहीं लगा था।

हम कोठी छोड़ देनेको उत्सुक थे; क्योंकि उसमें फुदकनेवाले छोटे कीड़े—पिस्सू बहुत थे और हमारे यहाँ आ जानेसे उन्हें उद्वेग हो रहा था। उद्विग्न होकर वे हम सबको उद्विग्न करते थे। उनके काटनेसे लाल फफोले उठ जाते थे और उनमें खाज तथा जलन होती थी। ऐसे फफोलोंकी संख्या दस-बीस प्रतिदिन शरीरपर बढ़ जाय, इतनी सहनशीलता हममें नहीं थी।

'हम यहाँ आये और रहे। यहाँके अधिदवेताको हमने आनेपर न तो प्रणाम किया और न उनके निमित्त एक धूपबत्ती जलायी, न दो पुष्प अर्पित किये।' जाते-जाते मुझे यह स्मरण आया। यह भी मनमें आया कि प्रथम दिन जो स्वप्न दीखे, उसमें यह भी हेतु हो सकता है।

'लगता है वह भी उदासीन हो गया है इस भवनसे।' जब भवनके वर्तमान स्वामी ही उसकी खोज-खबर नहीं रखते तो ऐसे जीर्ण, अस्वच्छ, धूलि-पक्षियोंकी बीट तथा गन्दगीसे भरे, नित्य अन्धकारपूर्ण भवनमें उसके अधिदेवताको क्या प्रसन्नता होगी। एक दिन वह इसे छोड़ देगा और भवन नष्ट हो जायगा।

'मैं उसे प्रणाम करूँगी।' संन्यासिनी महिलाने कहा। सचमुच भवनसे उतरकर उन्होंने नीचेकी सीढ़ीपर मस्तक रखा और भवनके अधिदेवतासे क्षमा माँगते हुए विदा ली।

हम नीचे धर्मशालामें चले आये; क्योंकि हमें पिस्सुओंके मध्य रहना स्वीकार नहीं था। उस भवनके अधिदेवता—उन्हें मेरा प्रणाम! हम जहाँ रहते हैं, जिन वस्तुओंका उपयोग करते हैं, उनके भी तो अधिदेवता हैं। उनकी ओर हमने कभी ध्यान दिया? उन्हें हमारी केवल प्रणति ही तो अपेक्षित है।

इस विराट् विश्वका अधिदेवता—वह परमपुरुष, अच्छा अब उसकी चर्चा रहने दें। वह प्रत्येकका अपना है—उसे तो प्रणति भी नहीं, केवल यह अपेक्षित है कि उसे अपना अनुभव किया जाय।

प्रेरणा-पथ—

हम क्या करें ?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

हम क्या करें ? यह एक सजग मानवकी माँग है। इस सम्बन्धमें गम्भीरतापूर्वक विचार करनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोग न करें, अपितु पवित्र भावसे सदुपयोग करें अथवा यों कहो कि दुरुपयोग न करनेपर सदुपयोग स्वत: होगा। यह एक प्राकृतिक विधान है। हाँ, विचारपूर्वक किये हुए सदुपयोगका अभिमान न करें और उसका अपने लिये फल न माँगें। केवल कर्तव्य-बुद्धिसे करनेकी बात है, जिससे विद्यमान रागकी निवृत्ति हो जाय। राग-निवृत्तिसे ही स्वत: योग प्राप्त होता है। यह प्रकृतिसे परेका विधान है। योगकी पूर्णतासे बोध एवं प्रेमकी अभिव्यक्ति होती है। यह प्रभुका मंगलमय विधान है। प्रकृतिका विधान कर्तव्य-विज्ञान, प्रकृतिसे परेका विधान अध्यात्मवाद एवं प्रभुका मंगलमय विधान आस्तिकवाद है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि प्रत्येक मानवमें करने, जानने और माननेकी सामर्थ्य है। यह उसे अपने रचयितासे प्राप्त हुई है। वह किसी प्रयासका फल नहीं है। इतना ही नहीं, यदि यह मान लिया जाय कि इन तत्त्वोंकी प्राप्तिसे ही प्रयासका आरम्भ होता है, तो अत्युक्ति न होगी। सामर्थ्यका दुरुपयोग न करना कर्तव्य-विज्ञान है, इससे मानव जगत्‌के लिये उपयोगी होता है; किंतु जगत्‌में अपना कुछ नहीं है। अत: अपनेको जगत्‌से कुछ नहीं चाहिये। यह अध्यात्म-विज्ञान अर्थात् मानव-जीवनका दर्शन है। दर्शन हमें स्वाधीन होनेकी प्रेरणा देता है। निर्मम तथा निष्काम होनेसे ही स्वाधीनतासे अभिन्नता होती है। जीवन-विज्ञान बुराई-रहित होनेकी प्रेरणा देता है और फिर स्वत: परिस्थितिके अनुसार भलाई होने लगती है। यही भौतिकवाद तथा कर्तव्य-विज्ञान है। यह कर्तव्य मानवको स्वत: करना चाहिये। यही मानवीय साम्य है, सच्चा साम्य है। यह साम्य मानवको स्वाधीनतापूर्वक अपने द्वारा अपने लिये अपनाना चाहिये, तभी व्यक्तिगत क्रान्तिसे समाज और व्यक्तिमें एकता होगी।

दूसरोंके द्वारा बलपूर्वक व्यक्तिगत सम्पत्तिके विभाजन-मात्रसे समाजकी गरीबी नहीं मिटेगी, अपितु समाजमें आलस्य और विलासकी ही वृद्धि होगी, जो दरिद्रताका मूल है। राष्ट्रगत सम्पत्ति हो जानेसे सरकारके नामपर समाजमें एक नौकरशाही वर्ग उत्पन्न हो जाता है। समाजमें बहुत थोड़े-से लोगोंके हाथोंमें देशकी सामर्थ्य आ जाती है। सामर्थ्यका अल्प संख्यामें एकत्रित हो जाना, व्यक्तियोंको सामर्थ्यके अभिमानमें आबद्ध करना है, जो विनाशका मूल है। जब अधिक संख्यामें सामर्थ्य विभाजित रहती है, तब मानव स्वाधीनतापूर्वक एकता तथा समताकी ओर अग्रसर होता है। अकिंचन तथा स्वाधीन होनेसे व्यक्तिको अपने लिये सामर्थ्यकी अपेक्षा नहीं रहती। फिर वह देहातीत अर्थात् जगत्‌से परेके जीवनको पाकर सन्तुष्ट हो, उदार तथा प्रेमी स्वत: हो जाता है, जिससे मानवकी जगत् और जगत्‌के प्रकाशकसे वास्तविक एकता हो जाती है। स्वाधीनता, उदारता और प्रेम उसका जीवन हो जाता है। उदारता, स्वाधीनता एवं प्रेम अविनाशी तथा अनन्त तत्त्व हैं अथवा यों कहो कि यह प्रभुका स्वभाव और मानवका जीवन है। पराश्रयसे गरीबी नष्ट नहीं होती। इसी कारण सम्पत्तिके आश्रित शान्ति नहीं मिलती। परिश्रम पर-सेवाके लिये है। उसके बदलेमें अपनेको कुछ नहीं चाहिये। तभी मानव श्रमके अन्तमें विश्रामको पाकर स्वाधीन होकर उदार तथा प्रेमी हो जाता है। हमें यही करना है कि स्वाधीनताका सदुपयोगकर स्वाधीन हो जायँ।

अपने लिये किसी अन्यकी अपेक्षा न हो; अपितु अपनेमें जो प्रेमास्पद है, उसीकी प्रीति अपना जीवन हो जाय। प्रीति और प्रीतमके नित्य-विहारमें ही अनन्त, अविनाशी, नित-नव रसकी अभिव्यक्ति होती है। उसकी उपलब्धि ही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति एकमात्र स्वाधीनताका सदुपयोग एवं स्वाधीन होनेमें है। यह जीवनका सत्य है। सत्यसे अभिन्न होनेके लिये यह ज्ञानपूर्वक अनुभव करना है कि संसारमें मेरा कुछ नहीं है, मेरा किसीपर कोई अधिकार नहीं है, अपितु मुझपर सभीका अधिकार है। बुराईरहित होनेसे सभीके अधिकारकी रक्षा स्वत: हो जाती है और भलाईका अभिमान तथा फल छोड़ देनेसे मानव स्वाधीन

होकर, अपनेमें अपनेको सन्तुष्टकर अविनाशी जीवनसे अभिन्न हो जाता है और फिर अनन्तकी अहैतुकी कृपासे उदारता तथा प्रेमकी स्वतः अभिव्यक्ति होती है।

'मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये'—ये मानवका पुरुषार्थ है। सर्व-समर्थ प्रभु अपने हैं, सब कुछ प्रभुका है—यह वेदवाणी तथा गुरुवाणीके द्वारा विकल्परहित विश्वासपूर्वक स्वीकार करना चाहिये। विश्वाससे भिन्न प्रभु-प्राप्तिका और कोई उपाय नहीं है। निर्विकारता, चिर-शान्ति तथा अविनाशी जीवन ज्ञानसे सिद्ध है और सब कुछ प्रभुका है, प्रभु अपने हैं—यह विश्वाससे सिद्ध है। विश्वास भी बल तथा ज्ञानके समान दैवी-तत्त्व है। बलका उपयोग विज्ञानसे होता है अथवा यों कहो कि विज्ञान भी एक प्रकारका बल है, उसका कभी भी दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। बल जगत्‌की सेवाके लिये है और ज्ञान भूलरहित होनेके लिये है और विश्वाससे ही प्रभुसे आत्मीय सम्बन्ध होता है। बलका दुरुपयोग न करना मानवता है अर्थात् जीवन-विज्ञान है। सदुपयोगके अभिमान तथा फलासक्तिसे रहित होना अध्यात्मवाद अर्थात् मानव-दर्शन है। जीवन-विज्ञान हमें उदारता तथा अध्यात्म-विज्ञान हमें स्वाधीन होनेकी प्रेरणा देता है। प्रभु अपने हैं, अपनेमें हैं—यह आस्था हमें प्रेम-तत्त्वसे अभिन्न करती है।

उदारता, स्वाधीनता एवं प्रेम ही जीवन है, जिसकी माँग बीजरूपसे मानवमात्रमें विद्यमान है। जीवनका जो सत्य है, उसे स्वीकार करनेसे ही भूलकी निवृत्ति एवं योग, बोध, प्रेमकी प्राप्ति होती है। यह अनुभव-सिद्ध सत्य है।

भगवान् शिवके मांगलिक वरवेशकी एक झाँकी

(श्रीशिवकुमारसिंहजी 'शिवम्')

शशिरेख अलंकृत चन्द्रप्रभा मुख, मध्य अलौकिक हीर बनी है।
अवगाहन देव करैं सगरे, छविसागर सागर-क्षीर सनी है॥
विष्णु करैं अगुवाइ सुरन्ह, शिव आजु बनें सब लोक धनी हैं।
जै-जै-जै महादेव की टेर मची, जैकारन्ह बीच में होड़ ठनी है॥ १॥
शशि-शीस को मौर सुगौर सुठौर, सुशोभा 'शिवम्' शिव ठौर खड़ी है।
शुभ शान्त सुश्वेतन्ह वस्त्र सजी, सुषमा नन्दीश्वर हीर जड़ी है॥
आठहुँ सिद्धि नवो निधि नाचहिं, ज्यों नचवारन्ह आँख गड़ी है।
विष्णु व इन्द्र व सिद्ध समस्त, गणादिक शोभित साख झड़ी है॥ २॥
देव समाज स्व देविन्ह संग, सुगंग-अरु यमुनहिं साथ लियो है।
विश्वावसु साथ गन्धर्वन्ह हाथ, दियो निज हाथन्ह छत्र लियो है॥
गावहिं मंगल गान सुतान, विधान-निधान को व्याह रच्यो है।
यशगानन्ह सेतु रच्यो सब देवन्ह, शहनाइ सजी सम्मान सज्यो है॥ ३॥
तब देखि विलक्षण रूप सुजान, सहर्ष सहस्त्रन्ह दीप सजायो।
कोटिक लक्ष सुकाम स्वरूप, लजावनहार दमादहिं पायो॥
आरति कीन्ह अनन्त सुभाव, सुपुष्पन्ह पूजन हेतु चढ़ायो।
अगवानिन्ह आदर कीन्ह अनेकन्ह, भाँति सुशम्भु को मान बढ़ायो॥ ४॥
करबद्ध कह्यो करिनी छमिबो, हम अज्ञ अजानन्ह को छमवारो।
तुम भाव 'शिवम्' हो अनाथन्ह नाथ, हे भावस्वरूप विराट अपारो॥
अपराध हमार कुभावन्ह धार, अधर्म अधार क्षमा करि डारो।
निज जानि हमहिं स्वीकार करो, हे महेश उमापति नाथ हमारो॥ ५॥
अस कहि मेना पगधरी, कीन्ह प्रणाम महेश।
लज्जित भइ जिमि कुमुदुनी, प्रगट निहारि दिनेश॥

संत-चरित—

एक विलक्षण विभूति—ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव

(श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव)

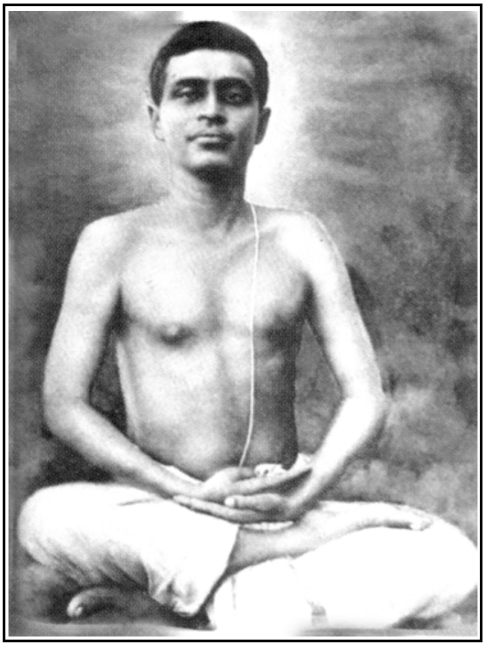

इस धरतीपर समय-समयपर अनेक ऐसी विभूतियाँ प्रकट हुई हैं, जिन्होंने मानवमात्रके कल्याण एवं अभ्युदयहेतु ही मनुष्य-शरीर धारण किया। ऐसी ही एक उच्चकोटिकी आध्यात्मिक विभूति थे, ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव।

बंगालके बारीशाल (इस समय बांग्लादेशमें) नामक स्थानमें शाक्त परम्पराके एक महान् साधक भैरवचन्द्र भट्टाचार्य थे। स्थानीय भैरवमन्दिरका एकमुण्डी आसन उनका साधना-स्थल था। उनके कोई पुत्र न होनेके कारण उन्होंने अपने दौहित्र कैलाशचन्द्रको अपना उत्तराधिकारी बनाया था। कैलाशचन्द्रकी पत्नी शारदा सुन्दरीको जब विवाह होनेके कई वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी कोई संतान नहीं हुई तो इस दम्पतीने अपने ग्रामके तारापीठमें माँसे संतानप्राप्तिहेतु प्रार्थना की। कहा जाता है कि देवीने उन्हें आशीर्वाद दिया कि स्वयं अपने अंशरूपसे इनकी प्रथम संतानके रूपमें जन्म लेंगी। इसके फलस्वरूप सन् १८८३ ई० में बारीशालके नवग्राममें ब्रह्मर्षि सत्येदवका अवतरण इस धरतीपर हुआ। शरत्-पूर्णिमाके चन्द्रमा-सी दिव्य कान्तिवाले, इस शिशुका नामकरण तदनुरूप शरदचन्द्र किया गया।

बालक शरदको बहुधा अपने ग्रामकी कीर्तन-मण्डलीके हरिनाम-संकीर्तनमें श्रीकृष्णके रूपमें सजा दिया जाता था। कुछ समय पश्चात् शरदने अपने बाल सखाओंको लेकर अपनी कीर्तन-मण्डली बना ली। उसी अवस्थासे ध्यानमें भी मन लगने लगा था।

प्रारम्भसे ही मेधावी शरदकी संस्कृतमें विशेष रुचि थी; क्योंकि धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य अधिकांशत: संस्कृत भाषामें ही थे। थोड़े ही समयमें वे संस्कृतमें न केवल विभिन्न विषयोंपर धारा-प्रवाह बोलने लगे, अपितु मौलिक रचनाएँ भी करने लगे। विद्यार्जनके साथ ही साधना और तपस्याका क्रम भी चल रहा था।

पारिवारिक उत्तरदायित्वके निर्वाहहेतु वे एक विद्यालयमें संस्कृत शिक्षक बनकर धनोपार्जन भी करने लगे। पुरोहिती उनका वंशानुगत कार्य था। स्वाभाविक रूपसे इसे भी अपनाया। किंतु जीविकोपार्जनके लिये यज्ञ-पूजन आदि करते समय उन्हें लगता था कि क्या वे यथार्थ रूपसे अभी इन क्रियाओंके मर्मको समझ भी सके हैं? क्या वे इस प्रकारकी पूजा सम्पन्न करके अपने यजमानोंका यथार्थ कल्याण कर पायँगे?

इस सबके बीच ही जगदम्बासे जीवनकी सार्थकताहेतु निरन्तर प्रार्थना करते रहते और जगदम्बाका तो जैसे अपनी इस दुलारी संतानके प्रति अधिक ही स्नेह था। इसीलिये कठिन परीक्षाओंके क्रमकी अगली कड़ीके रूपमें शरदचन्द्रका विवाह निस्तारिणी देवीसे करा दिया गया। वे सांसारिकतासे जितना दूर होना चाहते, उतने ही बँधते जा रहे थे। उन्हीं दिनों उन्हें एक स्वप्न आया। उन्होंने देखा—वे पूरी तरह बन्धनोंमें कसे हुए, एक खूँटेसे बँधे थे। सामने जगदम्बा खड़ी मुसकराती हुई कह रही थीं—'देखा! कैसे कसकर बाँध दिया है।' शरदचन्द्रने सोचा कि इन बन्धनोंमें तो वे स्वयं ही बँधे हैं, अत: स्वयं ही इन्हें खोल भी लेंगे। ऐसा ही उत्तर उन्होंने माँको दिया। वे और अधिक मुसकराती हुई बोलीं—'अच्छा! ऐसा है तो खोलो। शरदचन्द्रने उन बन्धनोंको खोलनेका जितना प्रयास किया, वे उनमें उतना ही अधिक कसते गये। घबराहटमें उनकी श्वास अवरुद्ध होने लगी। वे समझ गये कि जिसने ये बन्धन दिये हैं, वे

जगदम्बा ही इन्हें खोलेंगी।

सांसारिकताके बीच भी तपस्या और साधनाका क्रम टूट नहीं पाया। कभी नीमतल्ला श्मशानमें तो कभी घरके निकट स्थित कालीमंदिरमें ध्यानमग्न रहा करते। उन्हें लगने लगा था कि अब और अधिक समय जगदम्बासे दूर नहीं रह पायेंगे। अन्ततः एक रात सब कुछ त्याग देनेका निश्चय कर लिया। जगदम्बाकी खोजमें घरसे निकल, पागलों-सी अवस्थामें श्मशानकी ओर चल दिये। उस जनशून्य स्थानमें उन्होंने किसी स्त्रीको अपनी ओर आते देखा। निकट आनेपर जब वह उनके चरणोंमें झुकी तो उनका ध्यान भंग हुआ। देखा, लंबे केश, गैरिक वस्त्रावृत, त्रिशूलधारिणी, एक ज्योतिर्मयी योगिनी! उन्होंने उस भैरवीके चरणोंमें मातृ-भावसे नमन किया। रात्रिकी नीरवताको भंग करता योगिनीका स्वर उनके कानोंमें पड़ा—'बाबा! तुम तो स्वयं ज्ञानी हो। तुम्हारे अपने भीतर ही तो सब कुछ है। संसार-त्यागकर भटकनेसे क्या मिलेगा?' शरदचन्द्र घर लौट आये। घबरायी हुई माँके यह पूछनेपर कि इतनी रातमें कहाँ चले गये थे। उन्होंने उत्तर दिया—'माँको छोड़कर माँको ढूँढ़ने गया था। इसलिये माँने मुझे माँके पास वापस भेज दिया।' इसके पश्चात् वे गृहस्थाश्रममें रहते हुए ही अपनी साधनामें लग गये।

सन् १९११ ई० में वे कलकत्ता आ गये थे। पं० सीतानाथ 'सिद्धान्त वागीश' से न्यायशास्त्र पढ़ा। ब्राह्म-समाजकी सभाएँ भी सुनते थे। गुरुदेव रवीन्द्रनाथके भाषण भी सुनते थे। गृहस्थाश्रमके निर्वाहहेतु अध्यापनका कार्य करने लगे। प्रसिद्ध विद्यालय श्रीकृष्ण पाठशालामें पहले तो पण्डित तत्पश्चात् प्रधान पण्डितके पदपर कार्य करते रहे।

स्वाध्यायके साथ ही वे श्रीमद्भगवद्गीता, भागवत तथा अन्यान्य धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थोंका पाठ एवं उनसे सम्बन्धित चर्चाएँ करने लगे। इनके माध्यमसे उन्होंने उस समयके समाजमें धार्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्रमें जो विसंगतियाँ परिलक्षित हो रही थीं, उन्हें दूर करनेका यथासम्भव प्रयास किया। अपने वचनों तथा कर्मोंसे उन्होंने ज्ञान, भक्ति तथा कर्मकाण्ड—इन तीनोंको जनजीवनमें यथार्थ रूपसे प्रतिष्ठित किया। इन तीनोंकी ही श्रेष्ठता तथा पारस्परिक सम्बन्धसे समाजको अवगत कराया। जो भी इनके सारगर्भित वचनोंको सुनता, इनके सम्पर्कमें आता, वह इनका भक्त हो जाता।

सन् १९१८ ई० से इन्होंने शारदीय दुर्गापूजा भी सार्वजनिक रूपसे आयोजित करना प्रारम्भ कर दी। इस पूजामें सभी वर्णोंके स्त्री-पुरुष समानरूपसे सम्मिलित होते थे। बड़ानगरकी पूजामें ब्राह्मणवर्गद्वारा प्रारम्भमें इसका विरोध किया गया, किंतु अन्ततः ब्रह्मर्षिके ज्ञान एवं सद्व्यवहारसे प्रभावित होकर यह वर्ग अपना विरोध त्याग स्वयं उनका अनुयायी हो गया। इन पूजाओंमें देवीकी मृण्मयी प्रतिमामें चिन्मयरूपकी अनुभूति भक्तोंको होती थी। विभिन्न पूजाओंमें होनेवाली पशु-बलिकी प्रथाका उन्होंने विरोध किया तथा उसे बन्द किया।

देहात्मबुद्धि जीवके लिये प्रारम्भमें ही निराकार ब्रह्मकी साधना कठिन एवं दुष्कर है—ऐसा समझते हुए, वे सामान्य भक्तोंहेतु सगुणोपासना स्वीकार करते थे। अपने जीवनमें जिस आध्यात्मिक स्तरपर वे पहुँच चुके थे, वहाँ आवश्यक न होते हुए भी अपने शिष्यगण तथा जनसामान्यकी शिक्षाहेतु उन्होंने देवी-देवताओंकी पूजा एवं पितृ-कर्म आदिका त्याग नहीं किया था। प्रारम्भिक साधकोंहेतु वे मूर्ति-पूजा एवं भेदमूलक उपासनाको ही उनके सम्मुख प्रस्तुत करते थे। शाक्त, वैष्णव एवं शैव आदि विभिन्न मतावलम्बियोंमें जो परस्पर विरोधी या स्वमतको ही सर्वश्रेष्ठ माननेकी विचारधारा समाजमें प्रवाहित हो रही थी, उसे देखते हुए उन्होंने सभी मतोंको श्रेष्ठ दिखाते हुए तथा सभीमें एक ही परम सत्ताके विविध रूपोंमें उद्भासित होनेके विश्वासको दृढ़तापूर्वक स्थापित करते हुए, स्वयं विभिन्न देवी-देवताओंकी पूजा विविध पर्वोंपर आयोजित करना प्रारम्भ किया। शारदीय दुर्गापूजा, कृष्णजन्माष्टमी, रास एवं दोलयात्रा, शिवरात्रि, सरस्वतीपूजा, जगद्धात्रीपूजा, स्वास्थ्य एवं आरोग्य प्रदान करनेवाले सूर्यदेवकी पूजा आदि ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं। कदाचित् यही कारण था कि वैष्णवोंको वे परम वैष्णव लगते थे तो शाक्त मतावलम्बियोंकी दृष्टिमें वे परम शाक्त साधक थे। अनेक जिज्ञासु भक्तगण अपनी जिज्ञासाओंको लेकर उनके पास आते थे तथा समाधान प्राप्तकर सन्तुष्ट होते थे।

उन्होंने शंकराचार्य-जैसे अनेक सन्तोंकी परम्पराका

अनुसरण करते हुए भारतके विभिन्न तीर्थस्थलोंका भ्रमण किया। वे जहाँ भी अपने भक्तों एवं शिष्योंसहित जाते थे, वहाँ स्थित प्रमुख धार्मिक आश्रमों आदिमें अवश्य जाते तथा वहाँके प्रमुख आचार्यों, सन्तों आदिसे धार्मिक चर्चाएँ करते। इसी क्रममें वे काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, अमृतसर, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि नगरोंमें गये। दक्षिण भारतमें उन्होंने महर्षि रमणसे भेंट की तथा उनके साथ गम्भीर तत्त्वालोचन हुआ।

वे एक बार श्रीजगन्नाथजीके दर्शनहेतु पुरीधाम गये। जाते समय उन्हें विदा करने आये भक्तोंने उनको अनेक पुष्प तथा मालाएँ आदि भेंट की थीं। उनमेंसे एक लाल गुलाबोंका स्तवक ब्रह्मर्षिको बहुत सुन्दर लगा। उन्होंने निश्चय किया कि इसे जगन्नाथजीको अर्पित करेंगे। किंतु वहाँ उन्हें उन फूलोंको लेकर मंदिरमें प्रवेशकी अनुमति ही नहीं मिली। वहाँ केवल पुजारी ही मंदिरके भीतर जाता था तथा भक्तगण बाहरसे ही दर्शन करते थे। वैसे भी उन गुलाबोंको पूजामें चढ़ानेकी अनुमति भी नहीं थी। अतः दर्शनार्थ प्रवेशहेतु भी उन फूलोंको बाहर ही छोड़ देनेको कहा गया। उन्होंने सोचा कि वे इतनी दूरसे ये फूल जगन्नाथजीको अर्पण करनेका संकल्प मनमें लेकर आये हैं, तो क्या उनका संकल्प मिथ्या होगा ? वे मंदिरके द्वारके निकट ही आसन लगाकर ध्यानावस्थित हो गये। नियत समयपर जब पुजारी पूजाके लिये आये तो मंदिरके द्वारके निकट एक संतके दिव्य दर्शन पाकर वहीं ठिठक गये। वे उन्हें अपने साथ आदरसहित मंदिरके भीतर ले गये। उस दिन जगन्नाथजीकी पूजामें वे लाल गुलाब भी अर्पित हुए। इसके पश्चात् जबतक ब्रह्मर्षि पुरीमें रहे, पुजारीजी प्रतिदिन उनका सत्संग करते रहे तथा पूजाके यथार्थ स्वरूपको उनसे समझते रहे।

एक बार काशी-प्रवासके समय वे विश्वनाथजीके मंदिरमें गये। किंतु वहाँ स्थित विग्रहमें विश्वनाथजीका साक्षात्कार न हो पानेके कारण वैसे ही लौट आये। कुछ दिनों पश्चात् जब वे अपने काशीके निवास-स्थानपर साधनामें मग्न थे तो एकाएक उठकर बिना किसीसे कुछ कहे सीधे विश्वनाथजीके मंदिर जा पहुँचे। विश्वनाथजीका साक्षात्कार पा वे अभिभूत हो उठे। मंदिरस्थित विग्रहसे वे भाव-विभोर हो लिपट गये। वहाँ उपस्थित पुजारी एवं भक्तगण भक्त और भगवान्‌के इस अभूतपूर्व मिलनके दृश्यको मन्त्रमुग्ध हो देख रहे थे। ब्रह्मर्षिका भावप्रवण संस्कृतका पाठ सुनते हुए तथा उनके भक्तिभावमें आत्मविस्मृत स्वरूपको देखते हुए किसीमें यह साहस नहीं था कि शिवविग्रहको उनके गाढ़ालिंगनसे मुक्त करानेकी चेष्टा करे!

ब्रह्मर्षिका आध्यात्मिक चिन्तन मात्र वैयक्तिक स्तरपर ही नहीं था। वे मानवमात्रके समग्र उत्थानहेतु चिन्तनशील एवं प्रयासरत थे। उनके समयमें भारत अंग्रेजोंके अधीन था। ब्रह्मर्षि इस दंशको गम्भीरतासे अनुभव कर रहे थे तथा इसके परिणामोंसे भी अवगत थे। इससे मुक्ति पानेहेतु उन्होंने उस समय कहा था—'....पराधीनता स्वीकारकर हम स्वाधीन विचारधारा, उच्चचिन्तन, सत्य व्यवहार पूरी तरहसे खो बैठे हैं।....देशवासियोंको सत्याश्रयी, सत्यधर्मी, सत्यावलम्बी और सत्यनिष्ठ बनानेहेतु देशको स्वाधीन होना होगा।' अपनी इस विचारधाराको कार्यरूपमें परिणत करनेहेतु उन्होंने 'सत्यालोक', 'देशमातृकापूजन' आदि पुस्तकोंकी रचना की। वे स्वयं 'देशमातृकापूजन' का आयोजन भी करते थे। इसमें भारतवर्षके मानचित्रकी पूजा विधि-विधानसे की जाती थी। प्राणप्रतिष्ठाके पश्चात् प्रणाम किया जाता था—

यद् वक्षसि वयं जातः यदङ्के नित्य संस्थिताः।
पुनर्यत्र लयं जातास्तं देशं प्रणमाम्यहम्॥

सन् १९२५ ई० में देशबंधु चितरंजनदासके अनुरोधपर उनके आवासपर भी अक्षय तृतीयाको ऐसा ही आयोजन किया गया था।

जनताद्वारा अन्नकी बर्बादीको देखकर उन्होंने अन्नका जीवनमें क्या महत्त्व है, इसे समझानेके लिये अन्नभोग मंत्रकी रचना की—'**ॐ अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्, अन्नात् हि एवं खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति**....' इत्यादि। अपने बड़ानगर आश्रममें रहते हुए उन्होंने इसका नियमित प्रयोग सब आश्रमवासियोंसे प्रारम्भ कराया।

धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रमें उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान है, उनका साहित्य। 'सत्यप्रतिष्ठा', 'प्राण-प्रतिष्ठा', 'सत्यालोक', 'देशात्मबोध', 'देशमातृका-पूजन', 'सत्यदर्शन', 'पूजातत्त्व', 'शोक-शान्ति', 'मातृदर्शन' प्रभृति उनकी रचनाएँ आध्यात्मिक जगत्‌में अत्यन्त समादृत हुईं। इनके अतिरिक्त 'ईशोपनिषद्‌की

व्याख्या', 'पातञ्जल-दर्शन' की सरल आध्यात्मिक व्याख्या, गीताके कुछ अध्यायोंकी व्याख्या भी उन्होंने प्रस्तुत की। मूलतः बँगला भाषा एवं संस्कृतमें रचित इन रचनाओंके हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद देशके विभिन्न भागोंमें पहुँचे। जिसने भी पढ़ा, वह रचनाकारसे मिलनेको व्याकुल हो उठा।

ढाकाके एक बड़े व्यवसायीके पुत्र क्षितीश घोष बचपनसे इंग्लैण्डमें शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। पढ़ाई पूरीकर वे शीघ्र ही इंजीनियर बननेवाले थे। इसी बीच एक दिन ईश्वरीय प्रेरणासे उनके मनमें सत्यानुभूतिकी एक झलक आयी। इसकी पूर्णताकी खोजमें वे अपने उस जीवनको तिलांजलि देकर हिमालय पहुँच गये। अनेक साधु, संन्यासियोंके सत्संगमें वर्षों बिताकर भी कोई मार्ग न खोज सके। दैवयोगसे ब्रह्मर्षि सत्यदेवरचित 'सत्यप्रतिष्ठा' का अंग्रेजी अनुवाद उन्हें प्राप्त हुआ। इसे पढ़कर उन्हें लगा कि वर्षोंसे जो खोज रहे थे, वह इस पुस्तकने सामने ला दिया। वे जीवनकी अन्तिम श्वासतक ब्रह्मर्षिके चरणोंमें रहे।

यद्यपि ब्रह्मर्षिकी सभी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं, फिर भी जिस कार्यविशेषके लिये उनका अवतरण हुआ था, वह था उनके ग्रंथ 'साधन-समर' की रचना।

'साधन-समर' श्रीदुर्गासप्तशतीकी अनुपम आध्यात्मिक व्याख्या है। सप्तशती-जैसे विलक्षण ग्रन्थकी अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं, किंतु इस टीकामें ज्ञान-भक्ति-कर्मकी जैसी त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, वैसा शायद अन्यत्र उपलब्ध न हो। इस ग्रन्थकी रचना सन् १९२० ई० में बँगला भाषामें हुई तथा हिन्दी अनुवाद सन् १९३० ई० में प्रकाशित हुआ। ब्रह्मर्षि इस ग्रन्थको अपनी रचना नहीं मानते थे, उनका मानना था कि जगदम्बा स्वयं इसकी रचयिता थीं। वस्तुतः कुछ विशिष्ट ध्यानावस्थित क्षणोंमें ब्रह्मर्षिके मुखसे सप्तशतीके सम्बन्धमें जो कुछ निःसृत होता था, उनके शिष्यगण लिख लेते थे। बादमें अवस्था सामान्य होनेपर ब्रह्मर्षि उस लेखनको देखते। ऐसे ही लेखोंको एकत्र करके माँके आदेशानुसार उन्होंने इसे सर्वसाधारणके लिये ग्रन्थाकारमें प्रस्तुत किया।

इस ग्रन्थके प्रकाशनने तत्कालीन धार्मिक एवं आध्यात्मिक जगत्में हलचल मचा दी। अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवं संस्थाओंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। किसी विद्वान्ने इसे अमूल्य सम्पदा बताते हुए प्रत्येक हिन्दू घरमें रखे जाने एवं पढ़े जानेकी बात की तो किसीने इस ग्रन्थके प्रत्येक अक्षरको स्वर्णमें मुद्रित करानेयोग्य बताया। जो भी हो, आज अधिकांश लोग इससे परिचित नहीं हैं, हिन्दीमें तो यह लगभग दुर्लभ ही है!*

यद्यपि ब्रह्मर्षि सत्यदेवने अपनी कुल-परम्परावाले गुरुसे विधिवत् दीक्षा ली थी, किंतु हावड़ाके आचार्य विजय कृष्णदेव शर्मारचित गीताके कुछ अध्यायोंकी यौगिक व्याख्या पढ़ने तथा शर्माजीसे सत्संग होनेके पश्चात् उन्होंने उन्हें गुरु स्वीकार किया था। वैसे शर्माजी भी ब्रह्मर्षिसे अत्यन्त प्रभावित थे तथा उन्हें आदरपूर्वक 'शरद पण्डित' कहते थे। गुरु-तत्त्वको भली-भाँति समझने तथा समझानेवाले ब्रह्मर्षिने अपने गुरु शर्माजीके प्रति अपने व्यवहार एवं आचरणको कभी भी शास्त्रोक्त आदर्शोंसे च्युत नहीं होने दिया।

शिष्यों और भक्तोंके अत्यन्त आग्रहपर इन्होंने अपने आश्रमको 'साधन-समर आश्रम' कहा जाना स्वीकार कर लिया था। आध्यात्मिक क्षेत्रमें आचार्य शरदचन्द्र अथवा शरद पण्डितके नामसे समादृत यह विभूति अपने सत्याचरण एवं सत्यप्रतिष्ठा-स्वरूप जनमानसद्वारा 'ब्रह्मर्षि सत्यदेव' नामसे जानी गयी।

बंगालके एक साधारण छोटेसे गाँवमें जन्म लेकर उन्होंने महान् तपस्वी बनकर आत्मज्ञान प्राप्त किया और जीवमात्रके कल्याणमें जीवन व्यतीत कर दिया। कठोर परिश्रमके फलस्वरूप अन्तिम दिनोंमें उनका स्वास्थ्य क्षीण हो चला था। सन् १९३२ में मात्र ४९ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अपनी भौतिक लीलाको विश्राम दिया। अन्तिम समयमें अपने भक्तोंके बीच, उन्हें आशीर्वाद देते हुए तथा 'ब्रह्मानन्दस्त्रोत' का पाठ सुनते हुए, उन्होंने यह भी कहा— 'मैंने देनेके लिये कुछ भी नहीं रखा है। सभी कुछ दे दिया है।' अध्यात्मके क्षेत्रमें उनके कार्यको देखते हुए इस कथनमें कोई अत्युक्ति नहीं लगती।

* 'साधन-समर' (कोड १९०१) गीताप्रेससे बँगला भाषामें प्रकाशित है और हिन्दी भाषामें प्रकाशनकी प्रक्रियामें है।

नामधारी सिक्खोंकी गोभक्ति

(संत श्रीनिधानसिंहजी आलिम)

ब्रिटिश शासन-कालकी बात है। पंजाबमें कौन्सिल ऑफ रीजेन्सी (Council of Regency)-का राज्य था। कौन्सिलके रेजिडेन्ट सर जॉन लारेंसने २४ मार्च सन् १८४७ ई०को एक आज्ञापत्रपर हस्ताक्षर किया था, जिसका आशय यह था कि अमृतसर शहरमें गोवध नहीं किया जायगा। उस आज्ञापत्रके निम्नलिखित वाक्यको एक ताम्रपत्र (Copper plate)-पर खुदवाकर उसे दरबार साहबके प्रवेशद्वारपर लटका दिया गया था—

'Kine are not to be killed at Amritsar.' यानी अमृतसरमें गोवध नहीं किया जायगा।

परंतु दो वर्ष बाद २४ मार्च सन् १८४९ ई०को अंग्रेजोंने पंजाबको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया। इसके सिर्फ नौ ही दिन बाद यानी दूसरी अप्रैलको ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी राज्यप्रबन्ध कमेटी (Board of Administration)-ने यह आज्ञा निकाली कि अब गोहत्याके कानूनको बदल दिया जाय। अतएव इस आदेशके अनुसार ५ मई सन् १८४९ ई०को वायसरायने यह घोषणा कर दी कि 'भविष्यमें किसीको भी अपने किसी कार्यसे अपने पड़ोसीकी उन प्रथाओंमें बाधा डालनेकी अनुमति नहीं होगी, जिसके लिये उसके धर्ममें आज्ञा दी गयी है।' कम्पनीकी राज्य-प्रबन्धक कमेटीने यह भी कह दिया कि 'जिस प्रतिबन्धको पहले लागू किया गया था, वह केवल सिक्खराज्यके सम्मानकी दृष्टिसे था। अब सरकारी आज्ञा हो गयी कि प्रत्येक शहरके बाहर जानवरोंके वध करनेवाले गोहत्यारों (बूचड़ों)-के लिये एक जगह निश्चित की जाय।'

पंजाबपर ब्रिटिश अधिकार होते ही सरकारकी उपर्युक्त कार्रवाइयोंसे हिन्दू-सिक्ख जनताके हृदयपर बहुत बुरी चोट लगी, जिसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्यकी जड़ जम गयी।

अमृतसरमें हिन्दुओं और सिक्खोंकी ओरसे प्रबल आन्दोलन आरम्भ हो गया और कसाईखाना खुलने तथा गोमांस बेचनेकी अनुमति दिये जानेके समयसे १८७१ ई० के बीच अमृतसरमें कई बार हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। अतएव २२ मई १८७१ ई०को अमृतसरकी म्युनिसिपल कमेटीकी बैठकमें इस प्रश्नपर बड़ा वाद-विवाद हुआ कि 'जनताके आन्दोलनको रोकनेके उद्देश्यसे आगामी वर्षके लिये कसाईखानोंका लाइसेन्स रद्द कर दिया जाय या जारी रखा जाय। 'इस बैठकमें अमृतसर कमिश्नरीके कमिश्नर मि० डब्ल्यू० डेविसने कसाईखाना चालू रखनेके पक्षमें एक जोरदार व्याख्यान दिया। हिन्दू तथा सिक्ख सदस्योंने इसका घोर विरोध किया, परंतु बहुमतसे यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि कसाईखाना चालू रखा जाय।'

जब १८४९ ई० से लेकर १८७१ ई० तक सारी चेष्टाएँ, जो कसाईखाना हटानेके उद्देश्यसे की गयी थीं, निष्फल गयीं, तब श्रीसतगुरु रामसिंहजीके कुछ कूके या नामधारी सिक्खोंने यह निश्चय किया कि गोहत्याका यह कलंक गुरुकी नगरीसे तबतक दूर नहीं किया जा सकता, जबतक कि अपने शीश बलिदान न किये जायँ। कानूनी और शान्तिमय साधन उनकी दृष्टिमें सब-के-सब व्यर्थ हो चुके थे। अतएव उन्होंने १५ जून १८७१ ई० की अँधेरी रातके लगभग ११ बजे कसाइयों (गोहत्यारों)-पर आक्रमण कर दिया तथा वध करनेके लिये बाँधी गयी सैकड़ों गौओंको मुक्त करके स्वयं भाग गये।

पुलिसने उनके बदले अमृतसरके कुछ प्रतिष्ठित हिन्दुओं और श्रीनिहंगसिंहको सन्देहमें गिरफ्तार कर लिया। और उनपर इतना अत्याचार किया कि उन निरपराधोंने यह स्वीकार कर लिया कि १५ जूनकी रातको गोहत्यारोंका वध उन्होंने ही किया था। अतएव अपराध स्वीकार करनेपर अदालतने उन्हें सख्त सजा

दे दी।

उधर श्रीभैणी साहब श्रीसतगुरु रामसिंहजीके हेड क्वार्टरमें एक भारी दीवान (सत्संग) हो रहा था। अमृतसरमें कसाइयोंकी हत्या करनेवाले नामधारी सिक्ख भी उस सभामें मौजूद थे। श्रीसतगुरुजीको अमृतसरकी घटनाके विषयमें यह मालूम हो चुका था कि यह काम उन्हींके कुछ सिक्खोंने किया है। अतएव आपने

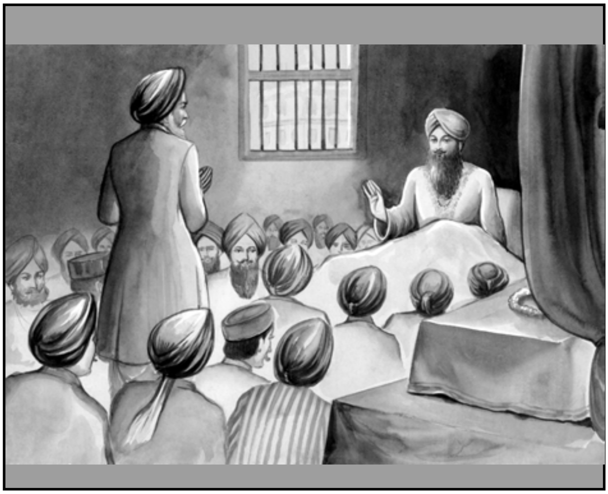

उन्हें आज्ञा दी कि वे शीघ्र-से-शीघ्र अमृतसर पहुँचकर सरकारी अधिकारियोंके सम्मुख उपस्थित होकर अपने दोषको स्वीकार कर लें, जिससे उनकी जगहपर पकड़े गये निर्दोष आदमी छूट जायँ। परंतु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हें किसी भी भय या प्रलोभनमें पड़कर अपने साथियोंके साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिये। उनका नाम बतलाना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। यह उनका कर्तव्य है कि वे अपना अपराध स्वीकार करें।

सतगुरुकी आज्ञा सिरपर रखकर नामधारी सिक्ख अमृतसर पहुँचे। और जब उन्होंने अफसरोंके सामने अपने अपराध स्वीकार करते हुए यह कहा कि '१५ जूनकी रातको अमृतसरमें जो लोग मारे गये थे, उनके मारनेवाले हम हैं' तो उनके आश्चर्यकी कोई सीमा न रही। पहले तो उनकी इस बातपर विश्वास न किया गया, परंतु जब उन्होंने सारी घटनाका वर्णन करते हुए हथियारतक बरामद करा दिये, तब उन्हें गिरफ्तार किया गया। परिणामस्वरूप जो निर्दोष सज्जन पुलिसके झूठे अभियोगके आधारपर अदालतसे सजा पा चुके थे, छोड़ दिये गये।

नामधारी वीरोंका मुकदमा—इन नामधारी या कूके वीरोंके विरुद्ध मेजर डब्ल्यू०जी० डेविस, सेशन जज और कमिश्नर अमृतसरकी अदालतमें २८, २९ और ३० अगस्त सन् १८७१ को मुकदमेकी सुनवायी होती रही और २१ अगस्तको फैसला सुनाया गया, जो इस प्रकार था—

फैसला

फाँसीकी सजा—

१-बाबा लहणासिंह, अमृतसर।

२-बाबा फतहसिंह, अमृतसर।

३-बाबा हाकिमसिंह पटवारी, मौजा मूड़े, जि० अमृतसर।

४-बाबा बिहलासिंह, नारली, जि० लाहौर।

काले पानीकी सजा—

१-लहणासिंह वल्द मुसद्दासिंह।

२-बुलाकासिंहका पुत्र लहनासिंह।

३-लालसिंह सिपाही।

(१) अड़बंगसिंह, (२) मेहरसिंह और (३) झंडासिंह—इन तीनोंको फरार घोषित किया गया।

फौजदारी कानूनकी दफा ३९८ के अनुसार सेशन्स जजने अपना फैसला तसदीकके लिये लाहौर चीफकोर्टमें भेज दिया, जिसकी तसदीक जस्टिस जे० कैम्पबेलने ९ सितम्बर १८७१ ई० को और जस्टिस सी०आर० लिंडसेने ११ सितम्बर १८७१ ई० को की। अतएव कूका-दलके ये चार प्राणोत्सर्ग करनेवाले सिपाही अमृतसरमें हँसते-हँसते और सत श्री अकालकी जय-जयकार करते हुए शहीद हो गये, और दूसरे तीन अंडमन टापूमें भेज दिये गये। देश और गोमाताकी रक्षा और सेवाके उद्देश्यसे कूके वीरोंका यह उज्ज्वल बलिदान भारतवर्ष-जैसी ऋषि-भूमि और गोभक्तोंके देशमें विशेष माहात्म्य रखता है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

विविध प्रश्नोंके उत्तर

सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। गुरु बननेकी न तो मेरी योग्यता है और न मैं समर्थ ही हूँ; अतः यदि आपने भूलसे मुझमें गुरुकी भावना कर ली हो तो उसे छोड़ दें और मुझे अपना मित्र मानकर ही पत्र-व्यवहार करें।

उत्तर शीघ्र देनेके लिये लिखा, सो क्या किया जाय। पत्र बहुत आते हैं। मुझे समय कम मिलता है, इस कारण देर हो ही जाती है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) ईश्वर सर्वसमर्थ और सर्वज्ञ है, अतः वह निर्गुण भी है और सगुण भी। समस्त दिव्य गुणोंका केन्द्र वही है। उसकी सत्तासे ही सबकी सत्ता है।

(२) भगवान्‌की शक्ति-विशेषका नाम माया है, इसको प्रकृति भी कहते हैं। गीता अध्याय ७ श्लोक ४ में इसे अपरा प्रकृतिके नामसे और श्लोक १४ में गुणमयी मायाके नामसे कहा गया है। इससे छुटकारा पानेका उपाय उसी श्लोकमें एकमात्र भगवान्‌की शरण लेना, उन्हींको अपना सर्वस्व मानकर सर्वभावसे उनका हो जाना बताया गया है।

(३) मनको जीतनेमें असमर्थताका अनुभव इसलिये होता है कि प्राणी विषयोंमें सुखकी आशा रखता है, उसकी कामनाको अपनी आवश्यकता मानकर उसे पूरी करना चाहता है और बुद्धिके ज्ञानकी अवहेलना करता रहता है। यदि ऐसा न करके विवेकयुक्त बुद्धिके अनुसार काम करे और कामना-त्यागसे मिलनेवाली परम शान्तिकी लालसाको सबल बना ले तो मन बड़ी सुगमतासे अपने-आप वशमें हो जाता है।

(४) भगवान्‌में श्रद्धा घटनेका कारण, जिनपर विश्वास नहीं करना चाहिये; उनपर विश्वास करना, नास्तिकोंका संग करना और उसके परिणामकी ओर नहीं देखना ही है।

(५) विषयोंका त्याग करनेमें असमर्थता तभीतक रहती है, जबतक उनसे सुखकी आशा है।

(६) भावकी शुद्धिसे मन शुद्ध होता है, भगवान्‌में श्रद्धा-विश्वास मनको शुद्ध बनानेमें सहायक है। भगवान्‌की कृपाशक्ति प्रत्येक मनुष्यको शुद्ध बनानेमें लगी है; पर मनुष्य अभिमानवश अपनेको उसके सम्मुख नहीं करता, अपनेको भगवान्‌की कृपापर नहीं छोड़ता। इसी कारण विलम्ब हो रहा है। दूसरोंके दोषोंका दर्शन, श्रवण, चिन्तन और वर्णन मनकी अशुद्धताको बढ़ाता है। अतः इसका त्याग परम आवश्यक है।

(७) प्रामाणिक और शुद्धतापूर्वक कार्य करनेवालेको वह सफलताकी परिस्थिति नहीं मिलती, जो झूठ-कपट करनेवालेको मिलती है—यह मान्यता या ऐसा समझना निराधार और गलत है; क्योंकि बहुत-से ऐसे मनुष्य भी देखनेमें आते हैं, जो झूठ-कपट करनेके लिये सर्वथा तैयार हैं और करते हैं, तो भी वे महादरिद्री और दुखी हैं। और ऐसे लोग भी देखनेमें आते हैं, जो झूठ-कपट नहीं करते तो भी बड़े सम्पत्तिशाली हैं। साधकके जीवनमें तो सम्पत्ति या किसी प्रकारकी परिस्थितिका कोई महत्त्व ही नहीं रहना चाहिये।

(८) जातिमें विषमता मनुष्यने स्वयं ही स्थापन कर ली है। परमात्माने जो कुछ किया है, वह तो प्राणियोंके कर्मफल-भोगके अनुरूप उनके हितके लिये ही किया गया है।

(९) अपना पूर्वजन्म जाननेकी इच्छामें कोई लाभ नहीं है,अतः इस इच्छाका त्याग कर देना चाहिये। पूर्वजन्म तो अनन्त हो चुके हैं।

(१०) दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिके उपाय प्रभुपर अनन्य विश्वास, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचारका निष्कामभावसे पालन करना है।

(११) जिस धर्मके ह्रासमें भगवान्‌का अवतार होता है, वैसे ह्रासका समय अभी नहीं आया है; क्योंकि कलियुगका समय है, अभी तो अधर्म और भी बढ़ सकता है; जब आवश्यक होगा, तब भगवान् निश्चय ही प्रकट होंगे—इसमें सन्देह नहीं। उनसे कुछ छिपा नहीं है।

(१२) गीता अ० ४ श्लोक ३३ में जिस ज्ञानके

प्राप्त होनेसे समस्त कर्मोंकी समाप्ति होनेकी बात कही गयी है, वह परमेश्वरका यथार्थ ज्ञान है। शास्त्रके पठन-पाठनका ज्ञान या साधनरूप ज्ञान नहीं है। इसमें जो कर्मोंकी समाप्तिका वर्णन है, वह भी क्रियाकी समाप्तिका नहीं, उनके द्वारा प्राप्त होनेवाले फलसहित शुभाशुभ कर्मोंके संस्कारकी समाप्तिका है।

(१३) मृत व्यक्तिकी हड्डियाँ गंगाजीमें बहा देनेसे उसकी उत्तम गति होती है, ऐसा लेख शास्त्रसम्मत है, इसमें प्रधानता श्रद्धाकी है। रहस्य क्या है, यह तो भगवान् ही जानते हैं, मैं क्या लिखूँ?

(१४) काम, अर्थ, भोगकी परिस्थितिकी प्राप्तिमें प्रारब्ध प्रधान है एवं धर्मपालनमें, मुक्तिमें पुरुषार्थकी प्रधानता है। प्रारब्धका फल मनुष्यको भोगना पड़ता है, तथापि मनुष्य साधनद्वारा उस फलभोगसे अतीत स्थिति प्राप्त करनेमें सर्वथा स्वतन्त्र है। यह साधनकी महिमा है।

(१५) मैं अंग्रेजीका विद्वान् नहीं हूँ, इस कारण आधुनिक विज्ञानके विषयमें आपने जिन विज्ञानवेत्ताओंकी मान्यता लिखी, उनके विषयमें कुछ नहीं कह सकता। मूर्तिपूजाके विषयमें तो मेरा यही कहना है कि आस्तिक भक्त मूर्तिको निमित्त बनाकर अपने इष्टदेवकी पूजा करता है, धातु या पाषाणकी नहीं।

(१६) एक व्यक्तिमें यदि दो परस्परविरोधी भाव कालान्तरमें जाग्रत् हो ही जायँ तो जो भाव शास्त्र और विवेकके अनुसार हो, जिसमें किसीका अहित न हो, उसीका आदर करना चाहिये। शास्त्र और विवेकके विरोधी भावका त्याग कर देना चाहिये।

मुझे गुरु नहीं मानना चाहिये, मैं किसीको शिष्य बनानेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। शेष प्रभुकृपा।

(२)

कर्मफल, भोग और मुक्ति

प्रिय महोदय! सादर प्रणाम, आपका पत्र मिला, समाचार ज्ञात हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१. जीव वैकुण्ठधाममें जानेपर मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

२. पाप और पुण्य दोनों समाप्त हो जानेपर जीव मुक्त हो जाता है। जबतक कर्मसंस्कार रहते हैं, तबतक जन्म-मरण होता रहता है। कर्मोंके विधानानुसार नाना योनियोंमें जन्म होता रहता है।

३. पाप-कर्मका फल जीवको हरेक योनिमें भोगना पड़ता है। नरकमें तो खास-खास पाप-कर्मका फल भुगताया जाता है। उतनेसे समस्त पापोंका फल समाप्त नहीं हो जाता। मनुष्य योनिमें पूर्वकृत पापका फल भी भोगा जाता है और नवीन कर्म करनेका भी अधिकार रहता है तथा मनुष्य अपना उद्धार भी कर सकता है; क्योंकि इसमें उसको विवेक प्राप्त है।

४. स्वर्ग और नरकमें कर्मचारियोंको भी उनके कर्मफलानुसार ही भिन्न-भिन्न अधिकार और कार्य मिलता है। उतने कर्मफलोंका पूरा भोग हो जानेपर संचित कर्मोंमेंसे जो कर्म भोगोन्मुख होते हैं, उन्हींके अनुसार उनको अन्य योनि मिलती रहती है।

५. ईश्वर तो एक ही है, चाहे उसे भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारें। भिन्न-भिन्न भाषा, देश आदिकी रचना उन्होंने जीवोंके अनेक कर्मोंका फल भुगतानेके लिये ही की है—ऐसा मानना चाहिये।

६. अन्य योनियाँ सब भोग-योनियाँ हैं, उनमें नया पुण्य-पाप नहीं होता। अतः उनमें परस्पर जीवोंकी जो हिंसा होती है, वह कर्मोंके अनुसार ही होती है; परंतु मनुष्यको प्रभुने विवेक दिया है, अतः उसे मांसभक्षण और परपीड़ा आदि न करनेके लिये शास्त्रोंमें आदेश दिया गया है।

७. स्वतः मरे हुए कीटसमूहसे जो रेशम प्राप्त होता है, उसे पवित्र माना गया है। उससे बने हुए वस्त्र आदि भगवान्‌के विग्रहके काममें लाये जायँ तो उत्तम है।

८. अंग्रेज, रूसी, मुसलमान आदि लोग चार वर्णोंमें नहीं आते; क्योंकि उनमें वर्ण-व्यवस्था नहीं है। उन्हें मनुष्य ही मानना चाहिये।

९. अश्वमेध-यज्ञमें युधिष्ठिरका घोड़ा, उस समय-तक जितनी धरतीका पता था तथा जहाँतक भारतीयोंका आवागमन था, वहाँतकके सभी देशोंमें गया और उनपर विजय प्राप्त की गयी—यही माना जाता है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

संं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।१ बजेतक	शनि	स्वाती रात्रिमें ६।५४ बजेतक	२० अप्रैल	**सायन वृषका सूर्य** दिनमें ४।१७ बजे।
द्वितीया ״ १।५४ बजेतक	रवि	विशाखा ״ ६।३५ बजेतक	२१ ״	**भद्रा** रात्रिमें १।३५ बजेसे, **वृश्चिकराशि** दिनमें १२।३९ बजेसे।
तृतीया ״ १।१६ बजेतक	सोम	अनुराधा ״ ६।४५ बजेतक	२२ ״	**भद्रा** दिनमें १।१६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।२४ बजे, **मूल** रात्रि में ६।४५ बजेसे।
चतुर्थी ״ १।७ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ״ ७।२४ बजेतक	२३ ״	**धनुराशि** रात्रिमें ७।२४ बजेसे।
पंचमी ״ १।२९ बजेतक	बुध	मूल ״ ८।३३ बजेतक	२४ ״	**मूल** रात्रिमें ८।३३ बजेतक।
षष्ठी ״ २।२३ बजेतक	गुरु	पू०षा० ״ १०।१० बजेतक	२५ ״	**भद्रा** दिनमें २।२३ बजेसे रात्रिमें ३।३ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिशेष ४।४१ बजेसे।
सप्तमी ״ ३।४३ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ״ १२।१४ बजेतक	२६ ״	× × × × ×
अष्टमी सायं ५।२७ बजेतक	शनि	श्रवण ״ २।३७ बजेतक	२७ ״	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी रात्रिमें ७।२३ बजेतक	रवि	धनिष्ठा रात्रिशेष ५।१२ बजेतक	२८ ״	**कुम्भराशि** दिनमें ३।५४ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ३।५४ बजे, **भरणीमें सूर्य** दिनमें ८।३० बजे।
दशमी ״ ९।२७ बजेतक	सोम	शतभिषा अहोरात्रि	२९ ״	**भद्रा** दिनमें ८।२५ बजेसे रात्रिमें ९।२७ बजेतक।
एकादशी ״ ११।२७ बजेतक	मंगल	शतभिषा प्रात: ७।४९ बजेतक	३० ״	**मीनराशि** रात्रिमें ३।४१ बजे, **वरूथिनी एकादशीव्रत** (सबका), **श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।**
द्वादशी ״ १।१२ बजेतक	बुध	पू०भा० दिनमें १०।१७ बजेतक	१ मई	× × × × ×
त्रयोदशी ״ २।३७ बजेतक	गुरु	उ०भा० ״ १२।३० बजेतक	२ ״	**भद्रा** रात्रिमें २।३७ बजेसे, **प्रदोषव्रत, मूल** दिनमें १२।३० बजेसे।
चतुर्दशी ״ ३।३३ बजेतक	शुक्र	रेवती ״ २।१९ बजेतक	३ ״	**भद्रा** दिनमें ३।६ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें २।१९ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें २।१९ बजे।
अमावस्या रात्रिशेष ४।१ बजेतक	शनि	अश्वनी ״ ३।४१ बजेतक	४ ״	**अमावस्या, मूल** दिनमें ३।४१ बजेतक।

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३।५६ बजेतक	रवि	भरणी दिनमें ४।३२ बजेतक	५ मई	**वृषराशि** रात्रिमें १०।३७ बजेसे।
द्वितीया ״ ३।२२ बजेतक	सोम	कृत्तिका ״ ४।५३ बजेतक	६ ״	× × × × ×
तृतीया ״ २।२० बजेतक	मंगल	रोहिणी ״ ४।४६ बजेतक	७ ״	**मिथुनराशि** रात्रिशेष ४।२९ बजेसे, **श्रीपरशुरामजयन्ती, अक्षयतृतीया।**
चतुर्थी ״ १२।५३ बजेतक	बुध	मृगशिरा ״ ४।११ बजेतक	८ ״	**भद्रा** दिनमें १।३६ बजेसे रात्रिमें १२।५३ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ״ ११।५ बजेतक	गुरु	आर्द्रा दिनमें ३।१८ बजेतक	९ ״	**आद्य जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती।**
षष्ठी ״ ९।२ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ״ २।४ बजेतक	१० ״	**कर्कराशि** दिनमें ८।२३ बजेसे, **श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।**
सप्तमी सायं ६।४५ बजेतक	शनि	पुष्य ״ १२।३८ बजेतक	११ ״	**भद्रा** सायं ६।४५ बजेसे, **श्रीगंगासप्तमी, कृत्तिकाका सूर्य** रात्रिमें ३।३१ बजे, **मूल** दिनमें १२।३८ बजेसे।
अष्टमी दिनमें ४।२० बजेतक	रवि	आश्लेषा ״ ११।२ बजेतक	१२ ״	**भद्रा** प्रात: ५।३२ बजेतक, **सिंहराशि** दिनमें ११।२ बजेसे।
नवमी ״ १।५१ बजेतक	सोम	मघा ״ ९।२१ बजेतक	१३ ״	**श्रीसीतानवमी, श्रीजानकी-जयन्ती, मूल** दिनमें ९।२१ बजेतक।
दशमी ״ ११।२६ बजेतक	मंगल	पू०फा० ״ ७।४२ बजेतक	१४ ״	**भद्रा** रात्रिमें १०।१६ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें २।५६ बजेसे।
एकादशी ״ ९।६ बजेतक	बुध	उ०फा० प्रात: ६।९ बजेतक	१५ ״	**भद्रा** दिनमें ९।६ बजेतक, **मोहिनी एकादशीव्रत** (सबका), **वृष-संक्रान्ति** दिनमें २।३७ बजे।
द्वादशी प्रात: ६।५८ बजेतक	गुरु	चित्रा रात्रिमें ३।४० बजेतक	१६ ״	**तुलाराशि** दिनमें ४।१३ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें ३।३३ बजेतक	शुक्र	स्वाती ״ २।५४ बजेतक	१७ ״	**भद्रा** रात्रिमें ३।३३ बजेसे, **श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत।**
पूर्णिमा ״ २।२५ बजेतक	शनि	विशाखा ״ २।२९ बजेतक	१८ ״	**भद्रा** दिनमें ३।० बजेतक, **श्रीबुद्धपूर्णिमा, श्रीबुद्धजयन्ती, वृश्चिकराशि** रात्रिमें ८।३५ बजेसे, **वैशाखस्नान समाप्त।**

कृपानुभूति

'जाको राखे साइयाँ, मार सकै न कोय'

दिनांक १९ मार्च २०१७ (रविवार)-की बात है, मथुरा नगरके मसानी स्थित चित्रकूटपर विगत वर्षोंकी भाँति 'होली-मिलन उत्सव' दिव्य-भव्यरूपमें आयोजित हुआ। फूलोंकी होली, वृद्धजन-सम्मान, सांस्कृतिक लोकगीतोंकी प्रस्तुतिके पश्चात् रात्रि १० बजे 'कवि-सम्मेलन' के द्वितीय चक्रका समारम्भ हुआ। प्रथम पंक्तिकी तीसरी कुर्सीपर मैं मन्त्र-मुग्ध होकर सरस्वती-पुत्रोंकी वाणीसे आबद्ध था। काव्यगत आनन्दके क्षणोंमें कुर्सीपर बिना पीठ लगाये मैं सिरो-भागसे आगे झुककर मंचपर एकटक दृष्टि गाड़े रसानुभूतिके किसी भी अवसरको निकलने नहीं देना चाह रहा था।

मुझे नहीं पता था कि मेरे सिरके ऊपर १५ फुटकी ऊँचाईपर पंखा घन्नाफेरी ले रहा है। कार्यक्रम भी समापनके चक्रमें था। अधिकांश लोग कविता-पाठके श्रवणमें तो कुछ भोजनके आस्वादनमें मस्त थे। हम 'बहुत अच्छे-बहुत अच्छे' शब्दोंसे अपना दायाँ हाथ उठाकर अन्य रसिक श्रोताओंके साथ स्वरसे स्वर मिलाकर दाद दे रहे थे। अचानक मुझे लगा कि रात्रिमें भटका कोई कबूतर अथवा बाज पक्षी अपने पंखोंसे मेरे सिरके दायें भागपर भूलसे आकर फड़फड़ाहट कर रहा है। सहज सम्वेदनात्मक प्रतिक्रिया स्वरूप मेरा सिर बचावकी मुद्रामें नीचे झुक गया। न जाने कब और कैसे दायें हाथने स्वत: प्रतिरोधीकी भूमिकामें सहज आगेकी अँगुलियोंसे धकेलनेसे अनुभूति करायी कि मुड़ी पंखुड़ियोंके साथ मोटरसहित पूरा सीलिंग फैन मेरे आगे ६-७ फुटकी दूरीपर खाली जगहमें जा गिरा है। सच तो यह है कि मुझे इस अनायासके घटनाक्रमके सचपर विश्वास भी नहीं हो रहा था।

मैं कुछ क्षणोंमें स्थिरचित्त हुआ और सुनिश्चित किया कि यह बाज पक्षी नहीं प्रत्युत साक्षात् कालरूपी बाजने सिरपर झपट्टा मारा था, परन्तु अलक्ष्य ईश्वरीय शक्तिने मुझ मन्त्र-मुग्धकी रक्षा कर ली है! उसने रक्षा कैसे की, यह तो वही जाने; पर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न था। सन्नाटा भरता भारी-भरकम पंखा भला सिरपर गिरे और चोट नहीं आये, कदापि सम्भव नहीं! मैं चोटको समझनेका प्रयास कर रहा था, शरीरके उस-उस अंगपर अपने सीधे हाथको जोर देकर फिराया तो ज्ञात हुआ कि सिरके दाँयीं ओर एवं बायीं ओर बालोंके निकट हलकी खरोंच लगी है, जो सिरपर गिरे भारी पंखेकी मुड़ी हुई पंखुड़ीका परिणाम थी।

यह एकान्तिक घटना नहीं थी, प्रत्युत सम्पूर्ण पण्डाल स्तब्ध रह गया और कुछ क्षणके लिये सबका ध्यान एक ही ओर केन्द्रित हो गया, सभी गतिविधियाँ ठहर गयी थीं। मुझे चन्द क्षणोंमें चारों ओरसे घेर लिया गया। कार्यक्रमके अध्यक्ष एवं सचिव महोदयने मेरे मना करनेपर भी बड़ी तन्मयता एवं आत्मीय भावके साथ एक वाहनसे प्राइवेट अस्पताल भेजा और प्राथमिक उपचार कराया। ईश्वरीय कृपाकी अनुभूति करानेवाली इस घटनाका अनुभवकर ये पंक्तियाँ बरबस मेरी जबानपर बार-बार आने लगीं—

होनी तो होकर रहे अनहोनी न होय।
जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय॥

आश्चर्य तो यह है यदि कोमल फूलसे भी किसीके सिरपर मारा जाय तो उसका भी थोड़ा-सा आघात होता है, परन्तु ऊपरसे सिरपर गिरे वजनी पंखेकी थोड़ी भी चोट मुझे अनुभव नहीं हुई, इस करिश्माई घटनाने मुझमें ईश्वरमें अपरिमित आस्था एवं विश्वास जगाया है कि वे सदा-सर्वत्र अपने जनोंकी रक्षा करते हैं।—**हेतीलाल त्रिपाठी**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदारी

बात पहलेकी है। श्रीरंगलालजीकी आसामके एक शहरमें दूकान थी। कपड़ा-गल्ला-सोना-चाँदी-किराना सभी चीजें वे बेचते थे। सच्चाई और ईमानदारी उनके स्वभावमें थी। असली माल देना, पूरा तौलना उनकी प्रतिज्ञा थी। इससे ग्राहकोंके हृदयमें उनपर पूरा विश्वास था और इससे उनका कारोबार छोटा होनेपर भी बड़ी शान्तिसे तथा सुचारुरूपसे चलता था, कोई झंझट नहीं था और गृहस्थीका खर्च आसानीसे निकल जाता था। वे बहुत पैसेवाले नहीं थे, पर सहृदय थे। उनकी पत्नी भी वैसी ही थीं। एक छोटा लड़का था। उनकी सच्चाईपर विश्वासके कारण आसपासके सभी लोग तथा उच्च अंग्रेज अधिकारीतक उनको मानते थे।

एक बार वहाँकी सरकारने पुलिस तथा जेल आदिके राशनके लिये टेण्डर माँगे। एक दूसरे बड़े व्यापारी थे, वे ही यह सब काम किया करते थे और अधिकारियोंसे मिलकर ऊँचे भावके टेण्डर मंजूर करा लेते तथा राशनकी चीजोंमें भी मिलावट करते थे। इसमें उन्होंने बहुत धन कमाया था। एक बार वे पकड़े गये। ऊपरके अंग्रेज अधिकारियोंको पता लगनेपर उन्होंने इनके टेण्डर ही लेने अस्वीकार कर दिये। रंगलालजीकी ईमानदारी तथा सच्चाईकी बात चारों ओर फैली थी, इससे उच्च अधिकारियोंने उनसे टेण्डर माँगे। उनके लिये यह नया काम था। नीचेके अधिकारी उस बड़े व्यापारीको साथ ले जाकर उनसे मिले और उनको बताया—'आप ऊँचे भावके टेण्डर दीजिये और मालमें भी मिलावट कीजिये। हमलोगोंका हिस्सा रख दीजिये। इससे चौगुनी आमदनी होगी। आप एक ही वर्षमें मालामाल हो जायँगे।' रंगलालजीको यह बात नहीं जँची, उन्होंने कहा—'न तो मैं ऊँचे भावके टेण्डर दूँगा, न मालमें मिलावट ही करूँगा।' उन अधिकारियों और उस व्यापारीने रंगलालजीको घर आयी लक्ष्मीका तिरस्कार करनेकी बेवकूफी न करनेके लिये बहुत समझाया। पर बेईमानी-चोरीकी बात उनकी समझमें ही नहीं आयी। इसपर उन लोगोंने कहा—'अच्छी बात है, आप कुछ भी न कीजिये। आप सिर्फ अपना नाम दे दीजियेगा। सारा सप्लाईका काम ये व्यापारी कर लेंगे और इस नामके एवजमें आप तीन वर्षतक पच्चीस हजार रुपये सालाना लेते रहिये। वह भी छः-छः महीनेका अग्रिम।' उस समय पच्चीस हजार रुपये बहुत बड़ी चीज थी, पर रंगलालजी इस लोभमें नहीं पड़े और प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उनकी इस मूर्खतापर वे लोग बहुत दुखी हुए। रंगलालजीने उचित भावके टेण्डर दिये। उन लोगोंने बहुत प्रयास किया कि इनके टेण्डर स्वीकृत न हों, पर रंगलालजीने जाकर संकेतमें बड़े अधिकारीको सब बातें बता दीं। अतः उनका टेण्डर मंजूर हो गया। इस सच्चे व्यापारमें उन्हें प्रतिवर्ष केवल आठ हजार रुपये बचते थे। साहबने उनकी ईमानदारी तथा सच्चाईपर प्रसन्न होकर ठेकेका तीन वर्षका समय पूरा होनेपर उन्हें दस हजार रुपये इनामके और दिलवाये तथा आगेके लिये भी उन्हींको नियुक्त कर दिया। यों सत्यकी रक्षा तथा विजय हुई।—**रामकुमार अग्रवाल**

(२)

कर्तव्यनिष्ठा

रेलवेके एक अधिकारीकी कर्तव्यनिष्ठाकी बात है। जूनागढ़के नवाबके व्यवहारके कारण गैर-मुस्लिम लोग गाँव छोड़कर चले गये थे। सर्वत्र निस्तब्धता थी। रेलवे क्वार्टरमें रहनेवाले इस अधिकारीके दरवाजेको आधी रातके समय किसीने खटखटाया। इन्होंने दरवाजा खोला। पाँच बुर्काधारी हाथोंमें रिवाल्वर लिये खड़े थे। उनमेंसे एकने कहा—'घबराना नहीं, हमें आपसे कुछ काम है।'

अधिकारी आश्चर्यमें डूब गये, साथ ही कुछ घबराये भी। परंतु प्रसंगको समझकर ऊपरसे स्वस्थता धारण करके वे उन लोगोंको अन्दर ले गये। स्वयं मुँहमें सिगरेट लेकर उन लोगोंके सामने सिगरेटका डिब्बा रख दिया। उनमेंसे एकने कहा—'साहब! हमें सिगरेट देकर आप हमारे मुख

देखना चाहते हैं न?' इसके बाद कुछ क्षण शान्ति रही। यह मौन साहबको व्याकुल कर रहा था।

मौन भंग करके अधिकारीने कहा—'कहिये, क्या काम है?'

टोलीका सरदार बोला—'काम बड़े ही जोखिमका है तथा सावधानीके साथ करनेका है। आपके सिवा दूसरे किसीको इस कामकी जिम्मेवारी सौंप नहीं सकते। आपको यह काम करना ही पड़ेगा।' एकाध क्षण चुप रहकर और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसने फिर कहा—'खूब सबेरे ही यहाँसे दारूगोला लानेके लिये मिलिटरीके साठ सिपाहियोंको लेकर एक गाड़ी (रेलवे ट्राली) वेरावल जायगी। आपको केवल इस गाड़ीको शापुरकी ओर जाते रास्तेमें उलटा देना है, जिससे साठों सिपाही, ड्राइवर और गार्ड—सबके चिथड़े-चिथड़े उड़ जायँ।'

'अच्छी बात है, आपमेंसे एक आदमी समयपर मेरे साथ चलियेगा, आपका काम हो जायगा।' अधिकारीने उत्तर दिया और उनकी स्वीकृतिसे प्रसन्न होकर बुर्काधारी टोली लौट गयी।

साहबने छुटकारेकी साँस ली और वे विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। रेलवेके एक अधिकारीके नाते उनका कर्तव्य था मुसाफिरोंकी तथा रेलवेकी सम्पत्तिकी रक्षा करना। और कुछ नहीं तो, कम-से-कम मानवताके नाते भावीमें फँसनेवाले उन मनुष्योंकी तथा उनके परिवारवालोंकी तबाहीपर विचार करके भी ऐसा निन्दनीय काम कभी नहीं करना चाहिये। पर उनके जरा भी आनाकानी करनेपर·····परिणामका ध्यान आते ही साहब तुरन्त काँप उठे। परंतु अन्तमें उनकी कर्तव्यनिष्ठाने साथ दिया और उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि जानको जोखिममें डालकर भी वे इस अनुचित कार्यको नहीं करेंगे।

निश्चित समयपर उस टोलीमेंसे एकने आकर किवाड़ खटखटाये। जरा भी न घबराकर अधिकारी उसे अन्दर ले गये।

उस बुर्काधारीने आते ही उतावली करनी शुरू की—'चलिये, साधनोंको लेकर जल्दी पहुँच जायँ और काम कर डालें।'

'देखो भाई, यह काम करना तो मेरे लिये बायें हाथका खेल है। परंतु मुझसे ऐसी धोखेबाजीका काम होगा नहीं, जिसका नमक खाता हूँ, उसका अहित मैं कैसे कर सकता हूँ?'

यह सुनते ही गरम होकर उस बुर्काधारीने अधिकारीको रिवाल्वर दिखाते हुए कहा—'यह ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा तुम्हारा साथ नहीं देगी। बेकारकी बातोंको छोड़कर चुपचाप तैयार हो जाओ।'

'यदि मेरे एकके मरनेसे बासठ मनुष्योंके प्राण बचते हों तो मुझे जीवनका मोह नहीं रखना चाहिये। लो, चलाओ गोली।' अधिकारीने छाती सामने करके कहा।

पता नहीं, क्यों, उसने रिवाल्वर वापस खींच लिया और जाते-जाते यह कहता गया कि 'साहब! यह बात कहीं बाहर न जाय, आपको मेरा इतना ही कहना है।'

और इस प्रकार एक भयंकर दुर्घटना होते-होते रह गयी। (अखण्ड आनन्द)—**दत्तात्रेय मोरेश्वर फाटक**

(३)

पत्नीने पतिका ऋण चुकाया

श्रीरामप्रतापजी मेरे पतिके सहपाठी और मित्र थे। कभी-कभी वे हमारे घरपर आया करते थे। मेरे स्वामीका भी उनके प्रति काफी स्नेह था। वे एक पाठशालामें शिक्षकका काम करते थे। गरीब थे। कुछ ही दिनों पहले उनका देहान्त हो गया। मैं उनकी विधवा पत्नी गुलाबबाईके पास जानेवाली थी, पर कार्यवश नहीं जा सकी। एक दिन रात्रिको गुलाबबाई स्वयं ही मेरे पास आयीं। उन्हें देखकर मैं सकुचा गयी। सोचा, गुलाबबाईने समझा होगा 'यह धनी घरकी स्त्री मेरे पास क्यों आने लगी।' मैंने उठकर आदरसे उनको बैठाया और श्रीरामप्रतापजीकी मृत्युपर दुःख तथा सहानुभूति प्रकट करते हुए क्षमा माँगी। मैंने कहा—'मैं आ रही थी, पर अमुक कामसे नहीं आ सकी। क्षमा करना—पर आप आज कैसे आयी हैं—बताइये।'

गुलाबबाईने आँसू पोंछकर कहा—'बहनजी! आपकी तो मेरे प्रति सदा ही प्रीति है। आप काम-काजमें नहीं आ सकीं, इससे क्या प्रीति कम थोड़े

ही हो गयी? वह तो मेरे भाग्यमें जो बदा था, सो हो गया। आपका किशोर इंजिनियरिंगमें है। आपलोगोंके आशीर्वादसे वह साल-दो सालमें कमाने लगेगा। फिर कोई चिंताकी बात नहीं रहेगी।' इतना कहकर उन्होंने बारह सौके नोट मेरे सामने रखकर कहा—'बहनजी! आज तो मैं एक कामसे आयी हूँ। आप जानती हैं—आपके स्वामी श्रीगोपालबाबूकी उनपर बड़ी प्रीति थी। गोपालबाबूका हार्टफेल होकर देहान्त हो गया, तभीसे वे बीमार थे। इसीसे यह काम अबतक हो नहीं पाया। जिस दिन उनका शरीर छूटनेको था, उस दिन उन्होंने मुझसे कहा—'भाई गोपालजीके मुझको बारह सौ रुपये देने हैं, उनका देहान्त हो गया है। उनकी पत्नीको इन रुपयोंका पता नहीं है। रुपये मैंने समय-समयपर किशोरकी पढ़ाईके कामसे लिये थे। पर मैं उन्हें अभी वापस दे नहीं सका। ये रुपये अवश्य चुकाने हैं। तुम्हारे पास कुछ गहना है, उससे अपना काम चलाना। किशोर कमाने लगेगा, तबतक तुम्हारा काम गहनोंसे चल जायगा। मेरे प्रोविडेण्ट फण्डके शायद चौदह सौ रुपये आवेंगे। मैंने लिख दिया है, वे तुमको मिल जायँगे। मिलते ही उसी दिन तुम भाई गोपालजीकी पत्नीको रुपये दे आना। वे न लेना चाहें तो उन्हें मेरी शपथ दिलाकर कहना कि उनकी आत्माकी शान्तिके लिये ही आप ले लें। तदनुसार मैं ये रुपये लेकर आयी हूँ। रुपये आज ही मिले हैं। आप दया करके रुपये लेकर हमें ऋणमुक्त करें।' मैं तो दंग रह गयी उनकी बात सुनकर। हाथमें तंगी होनेपर भी ऋण चुकानेमें इतनी त्वरा! मैंने बहुत समझाया। रुपये लेनेसे इनकार किया, मुझे पता भी नहीं था। पर वे मानीं नहीं। इस प्रकार आर्त होकर रोने लगीं कि मुझे उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी। धन्य!

इस घटनाको घटे बहुत साल हो गये हैं। उनका लड़का अब अच्छी कमाई कर रहा है। उसकी शादी भी हो गयी है। मजेमें है। पर मेरे हृदयपर उनकी जो छाप पड़ी, वह सदा अमिट रहेगी।—**रामप्यारी देवी**

(४)

सहृदयता

बात उस समयकी है, जब स्वर्गीय श्रीसुजानसिंहजी साहब जोधपुर स्टेटकी फौजके कर्नल थे एवं तीन गाँवोंके जागीरदार भी थे। उनके अधिकारमें हमारा गाँव भैसाणा (सोजन परगनेमें है) भी था। अतएव आप सालमें एक-दो बार हमारे गाँवमें आकर अपने बंगले (रावले)-में ठहरा करते थे। हमारे दादाजी श्रीछगनीरामजीकी उनसे अच्छी पटती भी थी। अतएव एक दिन मेरे दादाजी मुझे उठाकर वहाँ ले गये; क्योंकि मेरे पैरमें इतने अधिक फोड़े हो रहे थे कि मुझसे चला नहीं जाता था। हमारे रावराजाजी (जागीरदार) साहब डॉक्टरीका भी अच्छा ज्ञान रखते थे। उनके पास दवाइयाँ भी काफी रहती थीं। अपने बंगलेपर आये लोगोंको कुछ दवाइयाँ आप मुफ्त वितरण करते थे। मैं और दादाजी वहाँ पहुँचे, आप बैठे अखबार देख रहे थे। हमें आया देख दादाजीसे कुशल पूछते हुए उठकर खड़े हो गये और हमें आसन दिया। हमारे बोलनेके पूर्व ही आपने मेरे पैरका दर्द देखकर उसके बारेमें पूछते हुए एक आदमीसे दवाईकी पेटी एवं कुछ गरम पानी लानेको कहा। पानी आनेके बाद एक प्लेटमें मेरा पाँव रखकर आप स्वयं धोने लग गये। दादाजीने, मैंने एवं अन्य लोगोंने बहुत आग्रह किया कि 'हम धो देंगे, आप छोड़ दें' मगर आपने व्यंग्यपूर्वक मेरी तरफ देखकर कहा कि—'क्या तुम्हें मेरी सेवा स्वीकार नहीं है?' आपके मुँहसे सहसा यह वचन सुनकर सब चुप हो गये। परंतु मेरी आँखें बरबस भर आयीं। एक इतने बड़े जागीरदारका एक गरीबके साथ इतना अच्छा व्यवहार, जिसका कोई मूल्य ही दुनियामें नहीं, मेरी आँखोंमें पानी आना स्वाभाविक था।

अपने हाथोंसे घाव धोकर मवाद निकालकर दवाई लगाकर पट्टी बाँध दी और अधिकारके साथ यह कहा—'तुम्हें रोज आकर मेरी सेवा स्वीकार करनी होगी।' मैं क्या कहता? कहनेके लिये मेरे पास क्या था? उनके स्नेहभरे अधिकारपूर्ण आदेशके सामने सिर हिलानेके सिवा और क्या जवाब हो सकता था!

—**मीठालाल जोशी, पोन्नेरि**

मनन करने योग्य

कुन्तीकी धर्मबुद्धि

पाण्डव लाक्षागृहसे बच निकले और अपनेको छिपाकर एकचक्रा नगरीमें एक ब्राह्मणके घर जाकर रहने लगे। उस नगरीमें वक नामक एक बलवान् राक्षस रहता था। उसने ऐसा नियम बना रखा था कि नगरके प्रत्येक घरसे नित्य बारी-बारीसे एक आदमी उसके लिये विविध भोजन-सामग्री लेकर उसके पास जाय। वह दुष्ट अन्य सामग्रियोंके साथ उस आदमीको भी खा जाता था। जिस ब्राह्मणके घर पाण्डव टिके थे, एक दिन उसीकी बारी आ गयी। ब्राह्मणके घर कुहराम मच गया। ब्राह्मण, उसकी पत्नी, कन्या और पुत्र अपने-अपने प्राण देकर दूसरे तीनोंको बचानेका आग्रह करने लगे। उस दिन धर्मराज आदि चारों भाई तो भिक्षाके लिये बाहर गये थे। डेरेपर कुन्ती और भीमसेन थे। कुन्तीने सारी बातें सुनीं तो उनका हृदय दयासे भर गया। उन्होंने जाकर ब्राह्मण-परिवारसे हँसकर कहा—'महाराज! आपलोग रोते क्यों हैं। जरा भी चिन्ता न करें। हमलोग आपके आश्रयमें रहते हैं। मेरे पाँच लड़के हैं, उनमेंसे एक लड़केको मैं भोजन-सामग्री देकर राक्षसके यहाँ भेज दूँगी।'

ब्राह्मणने कहा—'माता! ऐसा कैसे हो सकता है? आप सब हमारे अतिथि हैं। अपने प्राण बचानेके लिये हम अतिथिका प्राण लें, ऐसा अधर्म हमसे कभी नहीं हो सकता।'

कुन्तीने समझाकर कहा—'पण्डितजी! आप जरा भी चिन्ता न करें। मेरा लड़का बड़ा बली है। उसने अबतक कितने ही राक्षसोंको मारा है। वह अवश्य इस राक्षसको भी मार देगा। फिर मान लीजिये, कदाचित् वह न भी मार सका तो क्या होगा। मेरे पाँचमें चार तो बच ही रहेंगे। हम लोग सब एक साथ रहकर एक ही परिवारके-से हो गये हैं। आप वृद्ध हैं, वह जवान है। फिर हम आपके आश्रयमें रहते हैं। ऐसी अवस्थामें आप वृद्ध और पूजनीय होकर भी राक्षसके मुँहमें जायँ और मेरा लड़का जवान और बलवान् होकर घरमें मुँह छिपाये बैठा रहे, यह कैसे हो सकता है?'

ब्राह्मण-परिवारने किसी तरह भी जब कुन्तीका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, तब कुन्ती देवीने कहा कि 'भूदेव! आप यदि नहीं मानेंगे तो भी मेरा पुत्र आपको बलपूर्वक रोककर चला जायगा। मैं उसे निश्चय ही भेजूँगी और आप उसे रोक नहीं सकेंगे।'

तब लाचार होकर ब्राह्मणने कुन्तीका अनुरोध स्वीकार किया।

माताकी आज्ञा पाकर भीमसेन बड़ी प्रसन्नतासे जानेको तैयार हो गये। इसी बीच युधिष्ठिर आदि चारों भाई लौटकर घर पहुँचे। युधिष्ठिरने जब माताकी बात सुनी, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने माताको इसके लिये उलाहना दिया। इसपर कुन्तीदेवी बोलीं—'युधिष्ठिर! तू धर्मात्मा होकर भी इस प्रकारकी बातें कैसे कह रहा है? भीमके बलका तुझको भलीभाँति पता है, वह राक्षसको मारकर ही आयेगा; परंतु कदाचित् ऐसा न भी हो, तो इस समय भीमसेनको भेजना ही क्या धर्म नहीं है? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—किसीपर भी विपत्ति आये तो बलवान् क्षत्रियका धर्म है कि अपने प्राणोंको संकटमें डालकर भी उसकी रक्षा करे।'

धर्मराज युधिष्ठिर माताकी धर्मसम्मत वाणी सुनकर लज्जित हो गये और बोले—'माताजी! मेरी भूल थी। आपने धर्मके लिये भीमसेनको यह काम सौंपकर बहुत अच्छा किया है। आपके पुण्य और शुभाशीर्वादसे भीम अवश्य ही राक्षसको मारकर लौटेगा।'

तदनन्तर माता और बड़े भाईकी आज्ञा और आशीर्वाद लेकर भीमसेन बड़े ही उत्साहसे राक्षसके यहाँ गये और उसे मारकर ही लौटे।

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरका अति महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

श्रीमद्भागवतमहापुराण–श्रीधरीटीका

श्रीमद्भागवतमहापुराणके प्राचीन टीकाकारोंमें श्रीधरस्वामी बहुमान्य टीकाकार हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराणपर इनकी 'भावार्थ-दीपिका' टीका (श्रीधरीटीका) प्राय: सर्वमान्य और प्रामाणिक टीका मानी जाती है। **प्रस्तुत ग्रंथमें श्रीमद्भागवतमहापुराणके संपूर्ण मूल संस्कृतके साथ श्रीधरस्वामीकी टीका भी प्रकाशित की गयी है,** साथमें गुजराती भाषानुवाद भी है। श्रीमद्भागवत संस्कृतके विद्यार्थियोंके लिये, शोधार्थियोंके लिये तथा कथाकारोंके लिये यह ग्रंथ विशेषरूपसे उपयोगी तथा संग्रहणीय है।

विभिन्न खण्डोंका विवरण

कोड	खण्ड	विवरण	मू० ₹
2156	प्रथम खण्ड	ग्रन्थाकार—श्रीमद्भागवतमाहात्म्य, प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्कन्ध	३५०
2157	द्वितीय खण्ड	चतुर्थ, पञ्चम एवं षष्ठ स्कन्ध	३५०
2158	तृतीय खण्ड	सप्तम, अष्टम एवं नवम स्कन्ध	३५०
2159	चतुर्थ खण्ड	दशम स्कन्ध [पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध]	३५०
2160	पंचम खण्ड	एकादश, द्वादश स्कन्ध एवं श्लोकानुक्रमणिका	३५०

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

सीमित संख्यामें उपलब्ध—गीता दैनन्दिनी सन् 2019, **कोड 506,** मूल्य ₹३५; एक साथ एक बण्डल (पुस्तक संख्या १८०) लेनेपर नेट मूल्य ₹२० में बाँटनेवाले पाठकोंको दिया जा रहा है। मँगवानेमें शीघ्रता करें।

खुल गया है—मेड़ता सिटी (राजस्थान) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० १ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।

प्र० ति० 20-02-2019
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2017–2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2017–2019

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी चैत्र शुक्ल द्वादशी (१६ अप्रैल)-से सत्संगका विशेष आयोजन प्रारम्भ किया जायगा, जो लगभग तीन मासतक चलेगा।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्‌गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक यज्ञोपवीत-संस्कार दिनांक ७ जून (ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी पूजा ६ जूनको प्रारम्भ हो जायगी। इच्छुक जनोंको ५ जूनतक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने, महँगे मोबाइल आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको **मतदाता पहचान-पत्र** अथवा फोटोयुक्त अन्य **पहचान-पत्र** रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक—गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

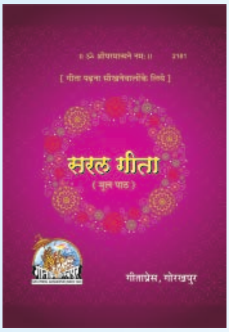

सरल गीता-मूल [सजिल्द, पॉकेट साइज] (कोड 2181)—यह पुस्तक गीताजीको याद करनेवाले पाठकोंको ध्यानमें रखकर प्रकाशित की गयी है। पाठकोंकी सुविधाके लिये प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। प्रत्येक श्लोकके नीचे गीताजीका मूल पाठ भी दिया गया है। इससे श्लोकके प्रत्येक चरणको समझने तथा याद करनेमें सहायता मिलेगी। मूल्य ₹२०

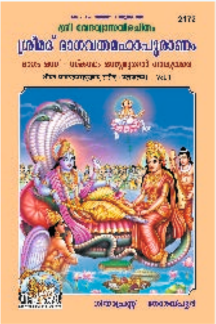

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (सटीक) [मलयालम] ग्रन्थाकार (कोड 2172 से 2174 तक तीन खण्डोंमें)—तीन खण्डोंमें विभक्त यह ग्रन्थ मलयालम भाषामें पहली बार प्रकाशित किया गया है। श्रीमद्भागवत-महापुराणके बारहों स्कन्धोंकी मलयालम भाषामें बहुत ही सरस, सरल व्याख्या की गयी है। **कोड 2172** प्रथम खण्ड अब उपलब्ध तथा **कोड 2173 व 2174** प्रकाशनकी प्रक्रियामें है। प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹३५०